वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली



क्रम संख्या ४३५८९

काल नं० ९८७.२२ प्रमाक

खण्ड

रीढ़ की हड्डी

[हिन्दी के आठ विशेष एकांकी]

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर



१६५२
सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार १९५८

मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
वेदव्रत विद्यालङ्कार
न्यू इंडिया प्रेस
नई दिल्ली

विषय-सूची

भूमिका

आज के युग मे एकांकी की मांग जिस गति से बढ़ रही है वह उसके भविष्य के लिये शुभ-लक्षण माना जा सकता है। केवल पढ़ने के लिये ही नही, खेलने के लिये भी एकांकी का प्रसार बढ़ रहा है और इस प्रसार के कारण हिन्दी रंगमंच के नवनिर्माण की आवाज भी उठ रही है। स्कूल और कालेज की सीमित परिधि से निकल कर एकांकी देहात के मुक्त प्रांगण मे पहुच गया है। बिहार के श्री जगदीशचन्द्र माथुर उधर के देहातो मे लोक-रंगमंच तैयार कर रहे हैं। उन्होंने कुछ घुमन्तू नाट्य-मंडलियो की स्थापना भी की है। रेडियो ने एकांकी के प्रसार को गति दी है।

एकांकी का इतिहास पुराना न होकर भी नया नही है। यद्यपि बीस वर्ष पहले आधुनिक एकांकी को हिन्दी मे कोई नहीं जानता था तो भी उस काल मे लिखे जानेवाले प्रहसनो को एकांकी न सही इनका पूर्वज तो माना ही जा सकता है। यही नही इस परम्परा को बडी सरलता से संस्कृत के नाटक साहित्य तक ले जाया जा सकता है और 'गोष्ठी', 'काव्य', 'अंक' आदि को एकांकी के विभिन्न रूप स्वीकार करने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। महाकवि भास के 'ऊरुभंग' और नीलकंठ के 'कल्याण सौगंधिक' से सभी परिचित हैं।

लेकिन भारतेन्दु-काल में एकांकी के नाम पर जो-कुछ सामग्री मिलती है उसमें आधुनिक एकांकी के तत्वों का अभाव है। उसकी चर्चा करने से पूर्व उस काल के सम्पूर्ण नाट्य साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना उचित होगा।

संस्कृत के नाटक साहित्य के बहुत समृद्ध होने पर भी हिन्दी ने उससे लाभ नहीं उठाया। इसके कई कारण थे। एक तो नाटक साहित्य

के पनपने के लिये जिस शान्ति और उत्साह की आवश्यकता होती है, लड़ाई-झगड़ो के कारण उसका यहाँ अभाव था। दूसरे हिन्दी में गद्य का विकास बहुत देर से हुआ। तीसरा कारण भी कम महत्व-पूर्ण नहीं है। मुसलमानो मे मूर्ति-पूजा और अनुकरण का निषेध है। इसलिये उनसे सम्पर्क होने पर इस कला को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। इन सब कारणों से भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र से पहले हिन्दी में नाटको का प्राय. अभाव ही है। जो नाटक मिलते हैं उनमे अधिकतर अनुवाद है।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। उन्होने जहा युग पर अपना प्रभाव डाला वहाँ युग की नई प्रवृत्तियो से पूरा-पूरा लाभ उठाया। उनके काल तक भारत अंग्रेजों के सम्पर्क मे आ चुका था और वह अंग्रेजी नाटक मे अपरिचित नहीं रहा था। बंगाल पर तो उनकी छाप पूरे तौर पर पड चुकी थी। भारतेन्दु अंग्रेजी, बगला, सस्कृत तीनो भाषाए जानते थे, इसलिए उनके नाटकों में जहाँ प्राचीनता है वहां नवयुग का प्रभाव भी है। शृंगार, हास्य और कौतुक के साथ समाज-सुधार और देशभक्ति का आदर्श भी है।

इस काल के नाट्य-साहित्य मे कई मौलिक परिवर्तन हुए। पहले नाटको मे जो प्रस्तावना आदि रहती थी वह अब समाप्त हो चली। नाटककार पौराणिक विषयो को छोडकर सामाजिक विषयो पर नाटक लिखने लगे। ऐतिहासिक नाटको की नीव भी इसी काल मे पड़ी। गद्य का प्रयोग बढ गया और हास्य तथा व्यंग्य को मात्रा भी अधिक रही।

भारतेन्दु के बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी के काल मे अनुवादो की भरमार रही। कुछ मौलिक नाटक भी लिखे गये, परन्तु उनमें अधिकतर पेशेवर नाटक कम्पनियो के लिये लिखे गये थे। इन नाटको मे साहित्य के स्थान पर लोकरुचि का ध्यान रखा जाता था। इस काल का रगमच भी बड़ा अस्वाभाविक था। इसलिए इन नाटकों का साहित्य मे कोई स्थान नही है। इस युग की मुख्य देन केवल यही है कि नाटको मे

खड़ी बोली गद्य का प्रयोग बढ़ा और रंगमंच पर हिन्दी को स्थान मिल गया।

नाटक साहित्य का प्रारम्भ जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है उसी प्रकार उसका वास्तविक विकास बा० जयशंकरप्रसाद के उदय के साथ होता है। उनके इस क्षेत्र मे आने पर जो नई प्रवृत्तियाँ विकसित हुई वे महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन नाटको मे मंगलाचरण, नान्दी, सूत्रधार और भरत वाक्य आदि जो शास्त्रीय नियम रहते थे वे अब समाप्त हो गए, तथा हत्या और युद्ध आदि के दृश्य जो नहीं दिखाये जाते थे उनका बे रोक-टोक प्रयोग होने लगा। ब्रजभाषा प्रायः समाप्त हो गई और गद्य की प्रचुरता बढ़ गई। धार्मिक के स्थान पर सामाजिक तथा पौराणिक के स्थान पर ऐतिहासिक कथावस्तु को प्रधानता मिलने लगी। प्रसादजी के प्रायः सभी नाटक ऐतिहासिक हैं। दैवी घटनाओ के लोप हो जाने पर मनुष्य का महत्त्व भी बढ़ गया। सभी जाति के पात्रों का चित्रण होने लगा। प्राचीन नाटको मे आदर्शवाद के कारण उनके पात्रो मे प्रायः अन्तर्द्वन्द्व नही होता था। सघर्ष तो दूर की बात है, पर प्रसाद के युग मे आदर्श के प्रति पुरानी भक्ति नही रही। समाज में सघर्ष बढ गया और उसीके साथ नाटकों पर भी उसकी छाप पड़ने लगी। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। इस प्रवृत्ति के कारण चरित्र के विकास को भी स्थान मिला। नाटको में अन्तर्द्वन्द्व बढ गया। पुराने नाटको मे भावो की गम्भीरता नही थी, बल्कि शब्दो का तूफान अधिक था। प्रसाद ने अन्तर्वेदना को स्थान देकर उस तूफान को शान्त किया।

इस प्रकार प्रसादजी के आते-आते विकास की एक मंजिल पूरी हो जाती है। इन्हीं के साथ-साथ हम नवयुग में प्रवेश करते हैं। नवयुग पर बर्नार्ड शा और इब्सन के नाटकों का प्रभाव है। प्रसाद के नाटकों से वे बहुत आगे बढ़ गए हैं।

आज के नाटकों मे प्रतिदिन जीवन से सम्बंध रखने वाली समस्याएं हैं। पात्र भी राजा-रानी या विशिष्ट व्यक्ति न होकर समाज के वे दूसरे लोग हैं जिन्हे हम कल तक छोटा समझते रहे थे। आज का नाटककार अतीत की ओर नही देखता भविष्य की ओर देखता है। वर्तमान युग में फुरसत कम है और दौड़-धूप अधिक है। नाटक पर इस बात का पूरा प्रभाव पडा है। रामायण-जैसे महाकाव्यो का युग समाप्त हो चुका है। अब तो मुक्तक यानी फुटकर कविताओं की मांग है। पैदल, बैलगाडी, घोडा-गाडी, भाप का इंजन, मोटर, रेल और अन्त मे हवाई जहाज़! मनुष्य कहां से कहां पहुंच गया। आज वह बहुत थोडे समय मे और बहुत थोडे शब्दो मे बहुत कुछ जान लेना चाहता है। इसलिए उपन्यास के स्थान पर आज कहानी प्रिय है, बडे नाटक छोटे होते जा रहे हैं। विज्ञान की उन्नति के कारण सिनेमा ने सारी रात के ड्रामे को अब दो घंटे के चलचित्र मे पलट दिया है। इसलिए आज का नाटक अधिक संक्षिप्त और अधिक वास्तविक होता जा रहा है। इसलिए रगमंच के संकेत पूरे ब्यौरे के साथ दिये जाते हैं।

व्यस्त जीवन और संक्षिप्तता से प्रेम के कारण ही इस युग में एकांकी की मांग बढ गई है। एकांकी का नाटक से प्राय. वही सम्बन्ध है जो कहानी का उपन्यास से है। जैसे कि हम शुरु मे कह चुके है, आधुनिक एकांकी का जन्म कोई बीस साल से अधिक पुराना नही है पर किसी-न-किसी रूप में वह संस्कृत काल से चला आता है। भारतेन्दु युग मे भी कुछ एकांकी लिखे गये। स्वयं भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ आदि इस युग के कुछ एकाकीकार हैं। इनके एकांकियो मे केवल सम्वाद ही प्रमुख हैं दूसरे नाट्य-तत्वो का प्रायः अभाव है। इसलिये कुछ लोग प्रसाद के 'एक घूंट' को वास्तविक एकांकी मानते हैं। इस काल मे इस कला पर पश्चिम का प्रभाव बंगला से होकर पडा है। प्रसाद के 'एक घूंट' के

सम्भाषणों पर रवि ठाकुर का प्रभाव है। उसमें कार्यगति का भी अभाव है। इसलिये अब आलोचक इस एकांकी को आधुनिक एकांकी का प्रथम नाटक मानने में संकोच करते हैं। सन् १६३५ मे हिन्दी के नवयुवक कलाकार श्री भुवनेश्वर के एकांकी सामने आये। उनमे कला और कथावस्तु सब दृष्टि से नवीनता थी पर वे पश्चिम से अत्यधिक प्रभावित थे। इससे भी हिन्दी एकांकी को ठीक दिशा नहीं मिली। सन् १६३८ मे 'हंस' का एकांकी नाटक अंक निकला जिसने इस कला को एक निश्चित दिशा प्रदान की। इसी समय एकांकी नाटक को एक और दिशा से प्रोत्साहन मिला। रेडियो के प्रचार और प्रसार के कारण छोटे नाटकों की मांग बढ़ी।

रेडियो नाटक और रंगमंच के नाटक अथवा एकांकी मे निश्चित रूप में अन्तर है। रेडियो नाटक केवल ध्वनि पर अवलम्बित है। रंगमंच पर अभिनेता शरीर के हाव-भाव द्वारा दर्शक पर प्रभाव डाल सकता है; पर रेडियो के अभिनेता के पास तो केवल शब्द ही हैं। एक ग्रामीण व्यक्ति ने रेडियो नाटक को अन्धों का सिनेमा कहा था। ये शब्द सुनने मे भले ही बुरे या अटपटे लगें पर अर्थ उसके बहुत सही हैं। रेडियो नाटक एकांकी भी हो सकता है और छोटा नाटक भी। कुछ भी हो इसके बाद तो एकांकी की प्रगति बड़ी सन्तोषजनक रही। उसके रूप मे स्थिरता आई और नये-नये प्रयोगों ने उसे गति दी। आज के एकांकीकारों में सर्वश्री रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, जगदीशचन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, गणेशप्रसाद द्विवेदी, सेठ गोविन्द-दास, अज्ञेय, लक्ष्मीनारायण अवस्थी, चन्द्रकिशोर जैन, प्रभाकर माचवे, हरिश्चन्द्र खन्ना, सत्येन्द्र शरत आदि कुछ प्रमुख नये-पुराने लेखकों के नाम लिये जा सकते हैं।

एकांकी के क्षेत्र में शैली और वस्तु की दृष्टि से इधर नये-नये प्रयोग बराबर हो रहे हैं। कुछ एकांकी ऐसे लिखे जाते हैं जिनमें केवल सम्वाद होता

है। ये केवल रेडियो पर ही खेले जा सकते हैं। कुछ नाटक केवल पढ़ने के लिये लिखे जाते हैं। इधर कुछ गीति-नाट्य भी लिखे गये हैं। श्री-सुमित्रानन्दन पन्त तथा श्री उदयशंकर भट्ट ने कई सुन्दर गीति-नाट्य लिखे हैं और रेडियो ने उन्हें प्रसारित किया है। कुछ गद्य सम्भाषण के साथ इपट्टा[1] ने ऐसे नाटक रंगमंच पर खेले भी हैं। यद्यपि पिछले दिनों नाटक में संगीत का स्थान कम होता जा रहा था पर इधर ऐसे गीति और नृत्य नाटकों की माग बढ़ रही है। संस्कृति की पुकार जैसे-जैसे बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे नृत्य और गीति नाटकों का प्रसार भी बढ़ता जाएगा।

इसके अतिरिक्त रेडियो तथा सिनेमा का प्रचार व प्रसार भी निरन्तर बढ़ता जाएगा और उसका प्रभाव दृश्य नाटक पर पड़े बिना न रहेगा। दृश्य नाटक ही नाटक का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकार है। यद्यपि आज हिंदी में रंगमंच का प्राय: अभाव है पर इपटा, पृथ्वीराज थियेटर तथा अनेक कालेज और क्लबों के रंगमंच की प्रगति इस बात का संकेत करती है कि भविष्य में हिंदी-रंगमंच नयी भावनाओं को लेकर आगे बढ़ेगा। उसमें दर्शक सुनता ही नहीं देखता भी है। देखता तो सिनेमा में भी है, पर सिनेमा में व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव है।

रेडियो नाटक के अतिरिक्त आज कल हिन्दी में प्रतीकात्मक नाटक, प्रहसन, फैंटेसी और मोनोड्रामा की चर्चा भी है, परन्तु अभी इस दिशा में कोई विशेष उल्लेखनीय काम नहीं हुआ है। मोनोड्रामा केवल मात्र सेठ गोविन्ददास ने लिखा है। भाव-नाट्य की परम्परा पुरानी होने पर भी आज केवल श्री गोविन्दवल्लभ पंत तथा श्री उदयशंकर भट्ट ने ही एक दो नाटक लिखे हैं।

नाट्य विधान की दृष्टि से एकांकी और कहानी में कोई अन्तर नहीं

१ इण्डियन पीपल्ज थियेटर।

है। उद्‌घाटन, विकास, चरमोत्कर्ष और अन्त—ये चारो भाग एकांकी के लिये भी माने जाते हैं, परन्तु हमारे विचार में किसी भी कला को नियमों मे नहीं जकड़ा जा सकता है। हा, आधुनिक एकांकी का सबसे बड़ा गुण संकलन-त्रय है। संकलन-त्रय का अर्थ है—समय, स्थान और कार्य-गति की एकता। आज का एकांकी उतने ही समय मे खेला जा सकता है जितने में उसकी घटना वास्तविक जीवन मे घटती है। घटनाओं के समय मे भी अन्तर नही होता और न स्थान-परिवर्तन होता है अर्थात् घटना एक ही स्थान और एक ही समय पर घटनी चाहिये। यह नहीं कि एक दृश्य आज का हो और दूसरा एक वर्ष बाद का, एक का स्थान दिल्ली हो और दूसरे का कलकत्ता।

श्री अश्क के शब्दो में—"सफल एकांकी मे रंग-संकेत स्पष्ट, कार्य-गति क्षिप्र, अभिनय सुन्दर, सम्वाद चुस्त और चुटीले, चरित्र-चित्रण यथार्थ तथा मनोवैज्ञानिक और अवसर के अनुसार प्रकाश अथवा छाया का प्रयोग होना चाहिये।

प्राचीन और नवीन एकांकी मे जो अन्तर है उनमे कुछ ये हैं—

(१) आज के एकाकी मे जटिल नियमो की भरमार नहीं है। विज्ञान की प्रगति और खुली हवा में खेले जाने वाले नाटको के प्रचार के कारण आज के एकांकी मे रंगमंच के विस्तृत संकेत दिये जाते हैं।

(२) आज के एकांकी मे प्रस्तावना, मगलाचरण और नान्दी की आवश्यकता नही है।

(३) आज के एकाकी में पात्रो व रसों का कोई बन्धन नहीं है। देवता और अलौकिक घटनाओ का इसमे कोई स्थान नहीं है।

(४) आज का एकांकी जीवन के अधिक समीप है। यथार्थता, मनोवैज्ञानिक सत्य और अन्तर्द्वन्द्व का उसमें पूरा समावेश है।

(५) आज का एकाकी मात्र राजा-महाराजाओ के मनोरंजन का साधन नही है। वह जनता का मनोरंजन करता है और मनोरंजन ही नहीं

वह उसके जीवन के विकसित होने में भी पूरी सहायता करता है। व्यक्ति से अधिक वह समाज का है । खोखली विलासिता से अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

(६) आज का एकांकी संसार को सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण समस्या-मूलक अधिक होता जा रहा है। लेकिन वादों की विभिन्नता और अस्थिरता के कारण वह प्रचारात्मक भी हो चला है। यह अस्वस्थता का लक्षण है, परन्तु साथ ही हमें यह विश्वास भी होता है कि जीवन के निकटतर होने के कारण वह साहित्य को नयी दृष्टि दे सकेगा।

इस प्रकार आज का एकांकी साहित्य समूचे जन-जीवन को समेटता हुआ तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। रेडियो, सिनेमा और रंगमंच तीनों क्षेत्रों में उसकी प्रगति अक्षुण्ण है।

नाट्य-कला सबसे बड़ी सामाजिक कला है। इसलिये इसका भविष्य किसी भी अवस्था में हो उज्ज्वल है और यह भी निश्चित है कि समाज में जो भी परिवर्तन होंगे उनकी छाप सबसे पहले इस कला पर पड़ेगी।

जहां तक प्रस्तुत एकांकी-संग्रह का सम्बन्ध है इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि संग्रह सुन्दर एकांकियों के साथ-साथ हिंदी के प्रतिष्ठित और प्रतिनिधि एकांकीकारों का प्रतिनिधित्व भी करे। विषय, शैली और विधान की दृष्टि से भी इसको प्रतिनिधि-संग्रह बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस संग्रह की एक और विशेषता यह है कि इसके सभी एकांकी संकलन-त्रय की कसौटी पर खरे उतरने वाले एकांकी हैं।

हम उन सभी नाटककारों के प्रति आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने कृपा कर अपनी अमूल्य रचनाओं को इस संग्रह में सम्मिलित करने की अनुमति दी। उनके सहयोग के बिना यह संग्रह इतना सुन्दर नहीं बन सकता था।

३३४६ पीपल महादेव,
पो० बा० ११६७, दिल्ली

—विष्णु प्रभाकर

रीढ़ की हड्डी

डा० रामकुमार वर्मा

नाटककार होने के साथ-साथ कवि और आलोचक भी हैं। हिन्दी-एकांकी के जन्मदाता माने जाते हैं। सर्वप्रथम नाटक 'बादल की मृत्यु' है जिसे सन् १६३० मे लिखा था। आप मध्य-प्रदेश के निवासी हैं। सागर में १५ नवम्बर १६०५ को आपका जन्म हुआ था; पर शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। वहीं आप प्राध्यापक भी हैं। आरम्भ से ही उस विश्वविद्यालय के रंगमंच से गहरा सम्बन्ध रहा है। इसी कारण आपके नाटक अभिनय-कला की दृष्टि से सफल हैं।

इधर जबसे रेडियो का प्रचार और प्रसार हुआ है तबसे आपके अनेक ध्वनि-नाटक प्रसारित हो चुके हैं। इस कला में भी पर्याप्त सफलता मिली है।

आप सर्वप्रथम कवि है। इसलिए आपके नाटकों में कवित्व की प्रधानता है। आप सौन्दर्य के शिल्पी और मनोभावों के सूक्ष्म विश्लेषण-कर्त्ता हैं। ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के नाटक लिखते हैं। सामाजिक नाटकों में हास्य की हल्की-हल्की छाया बराबर रहती है। भाषा सरल, भावप्रधान और मंजी हुई है। सम्वाद चुस्त है।

प्रतिशोध



पात्र-परिचय

भारवि	संस्कृत के महाकवि
श्रीधर	संस्कृत के महापण्डित, भारवि के पिता
सुशीला	भारवि की माता
भारती	एक विदुषी
आभा	सेविका

(श्रीधर ग्रंथ देखते हुए श्लोक पढ़ते हैं)

श्रीधर —ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्या जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

अर्थात्—जगत् में जो कुछ स्थावर और जंगम है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादित है। तात्पर्य, संसार के क्रोड में भगवान की ही सत्ता है। तू नामरूपात्मक बाहरी विकारों के परित्याग से वास्तविक सत्ता जो ईश्वर की है, उसका स्वाद . तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा . (सुशीला की ओर) तुम ध्यान से नहीं सुन रही हो ?

सुशीला—(ध्यान-मग्नता से चौंककर) ऐं, सुन तो रही हूं, किन्तु भारवि

श्रीधर —(बीच ही में) भारवि ! फिर भारवि ! भारवि के पीछे वेद छोड़ दो, उपनिषद् छोड़ दो, शास्त्र छोड़ दो। भारवि ही संसार में एक पुत्र है और तुम्हीं संसार में एक माता हो।

सुशीला—यह मैं नहीं कहती, किन्तु भारवि अभी तक नहीं आया !

श्रीधर —नहीं आया, तो आ जाएगा ! इस धारा नगरी में उसके आकर्षण के बहुत से केन्द्र हैं। कहीं बैठ गया होगा। कोई कविता का भाव खोजने लगा होगा। महाकवि जो बनता है। और तुम उसकी माता हो। तुम भी कविता का भाव खोजो न ! तुम तो अधिक अच्छा भाव खोज सकोगी। अच्छा, देखो ! यही भाव देखो, ईशावास्योपनिषद् के पहले ही श्लोक में 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'...अर्थात् तू नामरूपात्मक बाहरी विकारों के परित्याग से वास्तविक सत्ता जो ईश्वर की है—

सुशीला—ईश्वर की सत्ता तो है; किन्तु भारवि नहीं आया ?

श्रीधर —नहीं आया तो जायेगा कहाँ ! ..शिव शिव ! फिर भारवि ! क्या कहू सुशीला, भारवि तो उपनिषद् से भी बढ़कर हो गया है कि उसके चिंतन में उपनिषद् का भी चिंतन समाप्त हो गया। कोई चिन्ता नहीं। मै कहता हू, भारवि है कवि और कवि समय पर शासन करता है। समय उसपर शासन नहीं करता। दिवस और रात्रि के उज्ज्वल और श्याम रगवाले समय के जो नेत्र हैं उनमें कवि दृष्टि बनकर विचरण करता है। वह घर और बाहर में अन्तर क्या समझता है ? वह समस्त ससार को अपने में देखता है और अपने मे समस्त ससार को, कवि ससार में रहकर भी ससार से परे हो जाता है।

सुशीला—तो क्या भारवि कवि बनकर मेरा पुत्र नहीं रहा ?

श्रीधर —पुत्र तो है ही, किन्तु वह ससार का जनक भी है। जनक। अपनी कल्पना से वह न जाने कितने ससार के समूहो का निर्माण कर सकता है।

सुशीला—तो क्या कल्पना से वह अपनी माता का भी निर्माण कर सकता है ? और वह करे भी तो कर ले, किन्तु संसार में उसकी एक ही माता रहेगी, एक ही जननी रहेगी और वह मै हू, मै !

श्रीधर —हाँ, माता तो तुम्हीं हो। किसी दिन शास्त्रार्थ करके देख लेना।

सुशीला—शास्त्रार्थ के नियमो में माता का हृदय नहीं बाधा जा सकता। शास्त्र में सिद्धात है, प्रेरणा नहीं है। शास्त्र में माता की प्रशस्ति है, किन्तु माता के हृदय का स्पन्दन नहीं है। शास्त्र तो तत्व की बात कहता है, उसे आँसुओ की तरलता और सुख की विह्वलता का अनुभव नहीं है।

श्रीधर —माँ के आँसुओं की तरलता और सुख की विह्वलता का अनुभव पुत्र करता है ?

सुशीला—अवश्य करता है। क्रिया की प्रतिक्रिया तो होती ही है।

श्रीधर —व्याकुल होगा, तो देख लूँगा उसकी व्याकुलता। तुम इस व्याकुलता से ऊपर उठो। शास्त्र का चिंतन करो।

सुशीला—आप भारवि के पिता हैं तो शास्त्र का चिंतन कर सकते हैं। मैं कैसे करूं ? आज दूसरा दिन है और वह नहीं आया। और दिनों तो वह जल्दी आ जाया करता था। आज दूसरी रात्रि का दूसरा प्रहर है और वह अभी तक नहीं आया। न जाने कहाँ होगा। उसने भोजन भी किया होगा या नहीं ?

श्रीधर —सुशीला, तुम व्यर्थ ही चिन्ता करती हो। भारवि कोई शिशु तो है नहीं, जिसे भोजन कराने के लिए माता के दुलार की आवश्यकता है। वह किसी गोष्ठी में बैठकर कविता का आनन्द ले रहा होगा, यहाँ माता चिन्तित हो रही है !

सुशीला—आप इतने निष्ठुर कैसे है ? क्या शास्त्र का चिंतन और पाण्डित्य मनुष्य को निष्ठुर बना देता है ? भूख-प्यास में भी कहीं कवि-गोष्ठी से रुचि हो सकती है ? मेरा भारवि कहीं अन्यत्र भोजन नहीं करता।

श्रीधर —भारवि भारवि भारवि ! न तुम शांत रहोगी, न मुझे शांत होने दोगी। भारवि मूर्ख है और तुम..

सुशीला—(बीच ही में) हाँ, मैं भी मूर्खा हूँ। यदि पुत्र के लिए माँ की ममता मूर्खता है, तो ऐसी मूर्खता सदैव ही मुझमें बनी रहे। आप पण्डित बनें, शास्त्री हो, विद्या के आचार्य हो। मेरे लाल को मूर्ख समझें और मुझे भी।

श्रीधर —सुशीला, अब तुम्हें मैं कैसे समझाऊं ?

सुशीला—कहीं आप ही ने तो उसे घर आने से नहीं रोक दिया ?

श्रीधर —मैंने ?

सुशीला—हाँ, आपने !

श्रीधर —मैंने कभी रोका है ? कभी रोक सकता हूं ?

सुशीला—पिता सब कुछ कर सकता है । वह उसे घर से निर्वासित कर सकता है, जाति से निर्वासित कर सकता है, समाज से निर्वासित कर सकता है ।

श्रीधर —किन्तु हृदय से निर्वासित नहीं कर सकता ।

सुशीला—हृदय से न सही, घर से तो निर्वासित कर ही सकता है ।

श्रीधर —यदि वह अन्याय का आचरण करे, धर्म के प्रतिकूल चले, तो वह भी सम्भव है ।

सुशीला—तो आपने ही उसे आने से रोक दिया है ।

श्रीधर —मैंने रोका तो नहीं किन्तु यदि वह मेरी बात का उल्टा अर्थ लगाए, तो मैं क्या करूँ ?

सुशीला—तो आपने ही मेरे लाल से ऐसी बातें की हैं जो उसे कष्टकर हुईं ।

श्रीधर —यदि कष्टकर हों तो उसकी अपनी धारणा है ।

सुशीला—तो आपने उसकी ताडना अवश्य की होगी ।

श्रीधर —यदि पिता चाहता है कि उसका पुत्र सुमार्ग पर चले, तो कभी-कभी ताडना अनिवार्य हो जाती है ।

सुशीला—तो आपने उसकी ताडना की है ?

श्रीधर —हाँ, मैंने की है ।

सुशीला—इसीलिए वह नहीं आया ! क्या मैं कारण जान सकती हूँ ?

श्रीधर —अवश्य । इधर मैंने देखा कि वह शास्त्रार्थ में अनेक पण्डितों को पराजित कर रहा है ।

सुशीला—तो यह तो आपकी प्रसन्नता का विषय होना चाहिए ।

श्रीधर —होना तो चाहिए किन्तु मैं इधर देखता हूं कि पण्डितों की हार से उसका अहंकार बढ़ता जा रहा है । उसे अपनी विद्वत्ता

का घमंड हो गया है। उसका गर्व सीमा का अतिक्रमण कर रहा है। यह मुझे सहन नहीं हो सकता।

सुशीला—तो क्या आप मेरे लाल से ईर्ष्या करते हैं ?

श्रीधर —मूर्ख हो तुम भी। क्या पिता भी पुत्र से कभी ईर्ष्या कर सकता है ? क्या बीजांकुर अपने पुष्प से कभी ईर्ष्या करेगा ? किन्तु मैं यह सहन नहीं कर सकता कि मेरा पुत्र दंभी हो। मैं दंभी पुत्र का पिता होना अपमान समझता हूँ।

सुशीला—तो आपने उसे ताडना दी ?

श्रीधर —हाँ, उसे ताडना दी। और उग्र रूप से।

सुशीला—क्या कहा आपने ?

श्रीधर —मैंने कहा कि तू महामूर्ख है, दंभी है, अज्ञानी है।

सुशीला—यह आपने भारवि से एकांत में कहा या पण्डितों के सामने ?

श्रीधर —पण्डितों के सामने। मुझे किसका संकोच है ? पण्डितों के सामने ही मैंने अनुशासन किया।

सुशीला—पण्डितों के सामने ही ? पण्डितों ने क्या कहा ?

श्रीधर —कहेंगे क्या ? वे भारवि की ओर देखकर हंसने लगे। भारवि के स्वर में ही बोलकर वे उसका परिहास करने लगे और ताली पीटने लगे।

सुशीला—और बेचारा भारवि ?

श्रीधर —भारवि ने एक बार व्यथित दृष्टि से मेरी ओर देखा। फिर ग्लानि से अपने हाथों से अपना मुख छिपा लिया और तब वह एक ओर चुपचाप चला गया।

सुशीला—आपने रोका नहीं ?

श्रीधर —नहीं, यदि रोकता तो अनुशासन की मर्यादा कैसे रहती ?

सुशीला—मेरे लाल से अधिक प्रिय आपको अपने अनुशासन की मर्यादा थी।

श्रीधर —सुशीला ! मोह में मत बहो। अनुशासन की मर्यादा पर बड़े

से-बड़े व्यक्ति का बलिदान किया जा सकता है ।

सुशीला—ओह, आपके क्रोध को देखते हुए वह अब फिर घर लौट कर नहीं आयगा । मेरा भारवि अब घर लौटकर नहीं आयेगा । आपने अनुशासन की वेदी पर उसका बलिदान कर दिया ।

श्रीधर —क्यो ? इससे पहले भी मैंने उसको अनेक बार ताडना की है । फिर भी वह घर आया है, इस बार क्यों नहीं आयेगा ?

सुशीला—उसे आना होता तो इस समय तक वह अवश्य आ जाता । कहीं वह ससुराल तो नहीं चला गया ?

श्रीधर —नहीं, वह मेरी आज्ञा के बिना उस ओर एक पग भी नहीं रख सकता ।

सुशीला—तब कहीं उसने आत्महत्या

श्रीधर —चुप सुशीला । वह शब्द अपने मुख से न निकालना । श्रीधर पण्डित का पुत्र इतना पतित नहीं हो सकता कि वह ऐसा जघन्य पाप करे ! वह अनियमित कार्यों से मुक्त है ।

सुशीला—तब निश्चय ही वह देशान्तर चला गया ।

श्रीधर —हां, देशान्तर जा सकता है किन्तु जिस श्रद्धा से वह तुम्हे सम्मान देता है उसे देखते हुए वह तुम्हारी आज्ञा के बिना देशान्तर नहीं जा सकता ।

(किसी के आने की ध्वनि)

सुशीला—(उल्लास से) वह आया (पुकार) भारवि ! भारवि ! मेरे लाल ।

श्रीधर —(पुकार कर) भारवि !

(सेविका का प्रवेश)

सेविका—नहीं, मै हू स्वामी । आभा ।

सुशीला—आभा, भारवि नहीं आया !

आभा —अभी तक कवि नहीं आये ? मै तो समझती थी कि वे इस

समय तक आ गये होंगे।

सुशीला—वे अभी तक नहीं आये। तू जा, जल्दी से उन्हें खोज ला। जल्दी जा, मेरी अच्छी आभा !

आभा —मैं अभी जाती हूँ, स्वामिनि ! अभी खोज कर लाऊँगी। किन्तु आप भोजन तो कर लें ! मैंने पाकशाला में जाकर देखा, आपका भोजन सजा हुआ रक्खा है। आपने उसे छुआ भी नहीं है।

श्रीधर —तुमने भोजन नहीं किया, सुशीला ?

सुशीला—अब लाल के साथ ही भोजन करूंगी। न जाने उसने कुछ खाया-पिया है या नहीं। उसे ग्लानि है। ग्लानि में उसने खाया-पिया क्या होगा ? आभा, तू जा कवि को अपने साथ ही ले आ !

आभा —मैं अभी जाती हूँ।

सुशीला—तू कहा जायगी। जानती है भारवि इस समय कहाँ होगा ?

आभा —अतिथिशाला में होंगे। बाहर से आये हुए पण्डितों से वे प्रायः शास्त्रार्थ किया करते हैं। वहीं होंगे।

सुशीला—अब वह वहाँ न होगा।. वहाँ न होगा।

आभा —तब तो वे मालिनी-तट पर होंगे। वहाँ बैठकर वे अपनी कविताएं लिखा करते हैं।

सुशीला—रात में ? आभा, सभव है मालिनी-तट पर वह कुछ सोच रहा हो। नहीं, वहाँ भी वह न होगा। उसकी लेखनी मौन होगी।

आभा —तब जनपद में जाऊँगी।

श्रीधर —हाँ, अधिक से अधिक वह किसी जनपद में जा सकता है किन्तु तू अभी न जा आभा ! रात्रि अधिक हो गई है। मैं कल प्रात काल समस्त जनपदों में जा कर उसे खोज लाऊंगा।

आभा —स्वामी, आज्ञा दें तो दो एक जनपदों में अभी चली जाऊँ। स्वामी के प्रताप से मुझे मार्ग में कोई भय नहीं होगा।

श्रीधर —रात्रि में तू उसे खोज न सकेगी, आभा ! मैं ही जाऊँगा ।

आभा —जो आज्ञा । स्वामिनी भोजन कर लें तो बड़ी कृपा हो ।

सुशीला—आभा, तू जा । मैं भोजन न करूंगी । मुझे कष्ट न दें ।

आभा —मुझे क्षमा करें । एक निवेदन और है—महाकवि से परिचित एक युवती प्रवेश चाहती है । वह स्वामी के दर्शन की अभिलाषा रखती है ।

श्रीधर —मेरे दर्शन की ? मैं इस समय किसी से नहीं मिल सकूँगा ।

सुशीला—आने दीजिए । संभव है, कवि से परिचित होने के कारण उससे लाल के सम्बन्ध में कुछ सूचना मिल सके । आभा, बुला ले ।

श्रीधर —अच्छा, भीतर भेज दे ।

आभा —जो आज्ञा ।

सुशीला—गई ! आभा कहती है कि मैं भोजन कर लूं ।

श्रीधर —सुशीला, मैं तुम्हारे हृदय के दुःख को समझता हूँ ! मैं निश्चय ही कल प्रातःकाल सभी जनपदों में जाऊंगा और भारवि को खोज कर तुम्हारे पास ले आऊँगा ।

सुशीला—आपके अनुशासन की मर्यादा तो भंग न होगी !

श्रीधर —अनुशासन के स्थान पर अनुशासन और प्रेम के स्थान पर प्रेम है । प्रेम पर ही अनुशासन निर्धारित है और अनुशासन पर ही प्रेम । यदि प्रेम न हो तो अनुशासन का कोई मूल्य नहीं ।

सुशीला—आपको विश्वास है कि भारवि किसी जनपद में मिल जायगा ?

श्रीधर —मुझे विश्वास है कि जब वह अनियमित कार्यों से मुक्त है, तो किसी न किसी जनपद में अवश्य मिल जायगा ।

सुशीला—यदि नहीं मिला तो ..

श्रीधर —तो मैं राजकीय सहायता की प्रार्थना करूँगा । राजकीय शक्ति उसे कहीं से भी प्राप्त कर सकती है ।

सुशीला—आप मुझ पर महान् उपकार करेंगे ।

श्रीधर —मोह के वशीभूत न बनो । तुम पर मेरा उपकार कैसा ? तुम

शांति से शयन करो। मैं कल प्रात.काल भारवि सहित लौटूँगा।

सुशीला—परसों से गया है मेरा लाल, कौशेय वस्त्र धारण कर, पीत रंग का अधोवस्त्र और नील रंग का उत्तरीय! कुंचित केश! मस्तक पर पीत चंदन की पत्रावलि, मध्य में अरुण-बिन्दु। शास्त्रार्थ के लिए जाते समय मैंने अपने हाथों से उसे पुष्पहार पहिनाया था। उसने मुझे प्रणाम किया था। स्नेह गद्गद् हो मैंने कहा—विजयी बनो। उसके मुख पर हल्की मुस्कराहट थी। क्या जानती थी कि आज भी उसे पिता की भर्त्सना मिलेगी।

श्रीधर—भावुक मत बनो, सुशीला। विश्राम करो। मै तुम्हें वचन दे चुका हूँ कि तुम्हारा भारवि कल तुम्हारे पास होगा।

सुशीला—आज ही हो सकता था वह मेरे पास। यदि आप पुत्र-प्रेम से अधिक शास्त्र-चिन्तन को महत्व न देते।

श्रीधर—मैं समझता था कि वह सदा की भाँति अवश्य घर लौट आयेगा। मैंने भी थोड़ी मर्यादा रक्खी। किन्तु उस मर्यादा की सीमा समाप्त हो गई। कल मैं जाऊँगा। हम उसकी पत्नी के प्रति भी तो उत्तरदायी हैं और वह यहाँ नहीं है।

सुशीला—मेरे लिए न सही तो उसकी पत्नी के लिए ही आप कवि को खोज कर लायें।

(भारती का प्रवेश)

भारती—मैं आ सकती हूँ। प्रणाम करती हूँ। मेरा नाम भारती है।

सुशीला—भारती? आओ देवी! तुम कवि भारवि से परिचित हो?

भारती—वसन्त ऋतु में कोकिल के स्वर से कौन परिचित नहीं? प्रभात में भैरव राग के स्वर किसे जागरण का सन्देश नहीं देते? पूर्णिमा के आकाश मे अमृत का कलश चंद्रमा, अंधकार के हृदय में भी प्रकाश की मंदाकिनी प्रवाहित कर देता है।

ऐसे ही हैं महाकवि भारवि। उन्हें कौन नहीं जानता ?

सुशीला—तुम उन्हें कब से जानती हो, देवी ?

भारती —गत पूर्णिमा के पर्व में उन्होंने जो शास्त्रार्थ किया था, उसमें शास्त्र को जैसे जीवन मिल गया। आज तक वेदान्त की इतनी सुन्दर मीमांसा मैंने नहीं सुनी जैसी महाकवि भारवि के मुख से सुनी। जैसे ब्रह्म-ज्ञान सरस्वती की वीणा पर नृत्य कर रहा हो।

सुशीला—धन्य हैं मेरा कवि !

श्रीधर —इस समय तुम्हारे आने का अभिप्राय क्या है, देवी भारती।

भारती —महाकवि के दर्शन ! उनका सत्सग ज्ञान का सागर है जिसके तट पर बैठ कर मै अनुभूति की लहरें गिन सकती हूँ।

श्रीधर —लेकिन भारवि यहाँ नहीं है।

सुशीला—हाँ, कवि अभी तक नहीं आया।

भारती —मैंने तो उन्हें मालिनी-तट पर देखा था। सोचती थी कि इस समय तक वे यहाँ आ गये होंगे।

सुशीला—कब देखा था ? किस समय देखा था, देवी ?

भारती —आज प्रात.काल उषा वेला में।

सुशीला—तुम उससे मिली थी ?

भारती —नही ! वे उस समय ध्यान-मग्न थे। ज्ञात होता था जैसे वे भारती की उपासना कर रहे हो।

सुशीला—भारती की ?

भारती —(हँस कर) मेरी नही। वीणापाणि भारती की, सरस्वती की। मैंने उनका ध्यान भग नही करना चाहा। सोचा, बाद में उनसे वार्तालाप करूँगी।

सुशीला—फिर वार्तालाप किया ?

भारती —नहीं, वे उद्विग्नता से उठकर एक ओर चले गये। मै उन्हे पा न सकी।

सुशीला—उसके बाद पता पाया कि वह कहाँ गया ।

भारती —नहीं, फिर मैं न जान सकी कि वे कहाँ गये ।

सुशीला—वह तब से आया भी नहीं । उसके पिता भी तब से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

भारती —ये उनके पिता हैं ! प्रणाम करती हूँ ।

सुशीला—आयुष्मती बनो । देवी भारती ! भारवि जैसे ही आएगा तुम्हारे आने की सूचना दे दी जायेगी ।

भारती —मैं कृतार्थ हुई । किन्तु आप कष्ट न करें । कल प्रातःकाल मैं पुनः सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी ।

सुशीला— यदि इस बीच तुम्हें उसकी सूचना मिले देवी, तो मुझे सूचना देना । मैं कृतार्थ होऊँगी ।

भारती —अवश्य ! तो मुझे आज्ञा दें । प्रणाम करती हूँ ।

सुशीला—आयुष्मती बनो !

(प्रस्थान)

सुशीला—देवी भारती से भी मेरे लाल की कोई सूचना नहीं मिली ।

श्रीधर —अच्छा, अब तुम विश्राम करो, शांत मन से, स्थिर चित्त से ।

सुशीला—विश्राम ! स्थिर-चित्त ! (व्यंग्य की दबी हँसी) माँ के लिए विश्राम और स्थिर-चित्त जब उसका पुत्र उसके पास नहीं है । आप विश्राम करें, शास्त्र-चिंतन समाप्त करें ।

श्रीधर —मैं भी उठता हूँ । तुम शैया पर जाओ; बहुत देर से आसन पर बैठी हो । पैर में शून्यता हो जाएगी । कल जब भारवि आयेगा, तो उठ भी न सकोगी ।

सुशीला—उठ भी न सकूंगी । आप शयन करें, मैं अपनी शैया पर चली जाऊँगी ।

श्रीधर —उठो, मैं सहायता दे दूँ । स्थिर-चित्त से शयन करो । उठो, मैं वचन देता हूँ कि कल भारवि को अपने साथ ही ले आऊँगा ।

सुशीला—आप मेरे जीवन का सबसे बड़ा कार्य करेंगे । चलिये ।

(सुशीला उठकर अपनी शय्या पर जाती है ।)

श्रीधर —अब ठीक है । मैं दीपक मन्द कर देता हूँ । यह लो, अब इस शैया पर शयन करो । मैं भी शयन करते हुए सोचूँगा कि सबसे पहले कहाँ जाऊँ !

सुशीला—वह अपनी ग्लानि में कहीं दूर चला गया होगा ।

श्रीधर —चाहे जितनी दूर चला जाय । मैं तो उसे लाऊँगा ही ।

सुशीला—लाइए, अवश्य लाइए । उसके बिना मैं जी न सकूँगी । पूर्णिमा के चन्द्र की तरह वह मेरा एक ही लाल है । महाकवि, महा-पण्डित, भारवि !

श्रीधर —(नेत्र बन्द किये चिंतित मुद्रा में)—हूँ ! (कुछ शांति) शयन करो ।

(कुछ देर तक स्तब्धता)

सुशीला—(कुछ क्षण बाद) मुझे नींद नहीं आ रही है । मन न जाने क्या-क्या सोचता है ।

श्रीधर —अपना मन स्थिर करो । (कुछ शांति) ऊपर देखो, आकाश में कितने तारे हैं—ये एक दूसरे से कितनी दूर हैं किन्तु इनमें से कोई चिंतित नहीं है । सभी समान रूप से चमक रहे हैं ।

सुशीला—इन तारों में कोई माता न होगी ।

श्रीधर —अपने मन को कल्पना से मुक्त करो । सुशीला, ईश्वर की शक्ति में विश्वास रक्खो । बीज से फूल कितनी दूर रहता है किन्तु बीज कभी मलीन नहीं होता । वह फूल को प्रफुल्लित रखने के लिए निरन्तर रस भेजा ही करता है । तुम भी मंगल-कामना करो कि जहाँ भी तुम्हारा पुत्र हो सुखी रहे, प्रफुल्लित रहे !

सुशीला—मेरा पुत्र जहाँ भी रहे, सुखी रहे, प्रफुल्लित रहे ।

श्रीधर —हाँ, ईश्वर की शक्ति कण-कण में वर्तमान है, वह सबका

पोषण करता है, उस पर विश्वास रक्खो ।

सुशीला—मैं विश्वास रखती हूँ ।

श्रीधर —अब सो जाओ । विश्वात्मा का ध्यान करते हुए । मैं वही श्लोक पढता हूँ । मेरे स्वर में अपना स्वर धीरे-धीरे मिलाकर शयन करो । (श्रीधर धीरे धीरे श्लोक पढते है और सुशीला उनके स्वर मे स्वर मिलाती है ।)

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्या जगत्

त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथा (कुछ खटका होता है)

सुशीला—(चौंक कर) यह खटका कैसा ! क्या मेरा भारवि आ गया !

श्रीधर —अरे, यह तो हवा का झोका है जिससे द्वार पर शब्द हुआ है । तुम व्यर्थ ही इतनी व्यग्र हो, सुशीला । शान्त रहो ।

सुशीला—मैं शान्त हूँ । शब्द से मुझे भ्रम हुआ कि मेरा कवि आ गया । वह भी आते समय द्वार पर ऐसा ही शब्द करता था ।

श्रीधर —तुम्हारा भारवि कल अवश्य आ जायगा । तुम शान्त हो । देखो प्रकृति भी शान्त है ।

सुशीला—मैं शान्त कैसे रहूँ, चुप अवश्य हो जाऊँगी, किन्तु शान्ति में भी जुगनू को देखो जो अपने जीवन का प्रकाश लिये हुए चारो ओर उड रहा है—शायद इसका भी लाल कहीं खो गया है । कीट-पतङ्ग तक अपने लाल को खोज सकते है, मैं अपने जीवन का प्रकाश लिये हुए शान्त रहूँ,चुप रहूँ । हाय रे मनुष्य ! तू कीट-पतङ्गो से भी गया बीता है ।

श्रीधर —सुशीला, मैं बहुत दुखी हूँ तुम्हें देख कर । यदि तुम इतनी अशान्त हो, तो मैं अभी ही तुम्हारे पुत्र को खोजने के लिए जाता हूँ ।

सुशीला—अन्धकार मे वह कहा मिलेगा ? प्रात.काल जाइये । किन्तु मेरी प्रार्थना है कि अब आप मेरे लाल की निन्दा करना छोड

वें। आप सबके सामने उसे मूर्ख और विकल-बुद्धि बतलाया करते है इससे उसे मर्मान्तिक कष्ट होता है। वह पण्डित है, बुद्धिमान् है, अब से ऐसा न करें।

श्रीधर —सुशीला, मैं आज तुम्हें एक बात बतलाऊं ?

सुशीला—मेरे लाल के सम्बन्ध में ?

श्रीधर — हां, भारवि के सम्बन्ध में। बात यह है कि मेरा लाल आज संसार का महाश्रेष्ठ महाकवि है। दूर-दूर देशों में उसकी समानता करने का किसी को साहस नहीं है। वह शास्त्रार्थ में बड़े-से-बड़े पण्डितो को पराजित कर चुका है। उसका पाण्डित्य देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। किन्तु मेरे भारवि के मन में धीरे-धीरे अहङ्कार स्थान पाता जा रहा है। मै चाहता हूँ कि भारवि और भी अधिक पण्डित और महाकवि बने। पर अहङ्कार उन्नति का बाधक है। मैं उस अहङ्कार पर अकुश रखना चाहता हूँ। जिसे अपने पाण्डित्य का अभिमान हो जाता है वह अधिक उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है कि मै समय-समय पर उसे मूर्ख और अज्ञानी कहता हूँ। प्रशंसा तो सभी करते हैं किंतु अधिकारी से निन्दा भी होनी चाहिये। मैं नहीं चाहता कि अहङ्कार के कारण मेरे पुत्र की उन्नति रुक जाय।

सुशीला—(विह्वल होकर) क्या कहा आपने ?

श्रीधर —मैं नहीं चाहता कि अहङ्कार के कारण मेरे पुत्र की उन्नति रुक जाय।

सुशीला—तो जो आप मेरे लाल पर क्रोध प्रकट करते हैं वह सच्चा नहीं है ?

श्रीधर —अणु मात्र भी नहीं। इस क्रोध में पुत्र के प्रति मङ्गल-कामना छिपी है। मेरा पुत्र और भी विद्वान् हो, और यशस्वी बने।

सुशीला—ओह, आप कितने महान् है ?

(यकायक दरवाजा खोलने की तीखी आवाज होती है। भारवि हाथ में तलवार लिए लड़खड़ाते हुए आते है।)

भारवि—पिता, पिता !

सुशीला } श्रीधर }—(सम्मिलित स्वर मे) भारवि।

भारवि—हा, मै भारवि हूँ।

सुशीला—(विह्वल होकर) बेटा, तू कहा रहा ? मेरे बेटे, तू इतना निष्ठुर कैसे हो गया ? तू कहा था ? तेरी इतनी .तेरी इतनी...तू क्यो चला गया था ? कहा था, मेरे बेटे ? (सिसकने लगती है।)

भारवि—माँ, शान्त रहो। अपने चित्त को स्थिर रक्खो।

सुशीला—तेरे पिता भी कहते है अपने चित्त को स्थिर रक्खो, तू भी यही कहता है। मै कहा ले जाऊ अपने चित्त को ? प्रभु, इस ससार मे मा के चित्त को स्थिर क्यो नहीं बनाया ?

भारवि—माँ, मै यह कहता हूँ—

सुशीला—बेटा, अब मै कोई बात नहीं मानूँगी, तू बतला कि तूने अभी तक कुछ खाया या नहीं ? मै दो दिनो से तेरा भोजन लिए बैठी हूँ।

भारवि—मै इतनी ग्लानि मे हूँ मां, कि सम्भवतः मुझे जीवन भर भूख न लगे।

सुशीला—तो तूने अभी तक कुछ नहीं खाया।

भारवि—नही, माँ।

सुशीला—ओह, मेरा लाल, दो दिन का भूखा है। मै अभी भोजन लाऊँगी। मै अभी लाऊँगी (नेपथ्य मे पुकारती हुई जाती है।) आभा, आभा ! कवि आ गया, उसने अभी तक भोजन नहीं किया। कहाँ है, कहाँ है उसका भोजन...भोजन..'

भारवि—पिता, मै आपका पुत्र होने योग्य नहीं हूं। इस तलवार से

मेरा मस्तक काट दीजिए।

श्रीधर —वत्स, तुम्हारे मुख में ये शब्द शोभा नहीं देते। अपनी मर्यादा सुरक्षित रक्खो। मैं फिर कहता हूँ कि तुम मूर्ख हो। विकल-बुद्धि हो।

भारवि—सचमुच ही मैं मूर्ख हूँ। विकल-बुद्धि हूँ। और यह तभी प्रमाणित होगा जब आप मेरा मस्तक तलवार से काट देंगे।

श्रीधर —मेरे वाक्यों का प्रमाण तलवार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं रखता। तलवार का प्रमाण निर्बलों का प्रमाण है। निर्भीक वाक्य सबलों का प्रमाण है।

भारवि—किन्तु पिता, यह तलवार मेरा मस्तक नहीं काटेगी, उस ग्लानि को काट देगी, जो पिछले दो क्षणों से मेरे जीवन को झंझा की भाँति झकझोर रही है।

श्रीधर —ग्लानि से जीवन उत्पन्न नहीं होता, वत्स। जीवन से ग्लानि उत्पन्न होती है और इस तरह ग्लानि प्रधान नहीं है, जीवन प्रधान है। जब तुम जीवन के अधिकारी हो तो जीवन की शक्ति से ही ग्लानि को दूर करो, तलवार की अपेक्षा क्यों करते हो? और हाँ, तुम तो महाकवि हो! तुम्हारे हाथों में लेखनी चाहिए, तलवार नहीं। यह तलवार कैसी?

भारवि—पिता, मैं महाकवि नहीं हूँ, तभी तो हाथों में लेखनी नहीं है, तलवार है। जीवन का स्वामी नहीं हूँ, तभी तो ग्लानि का मुझपर अधिकार है।

श्रीधर —ग्लानि काला बादल है, वत्स! जो जीवन के चन्द्र को मिटा नहीं सकता। कुछ क्षणों के लिए उसके प्रकाश को रोक ही सकता है। उत्साह के प्रवाह से बादल को हटा दो।

भारवि—वह रक्त के प्रवाह से ही हटेगा, पिता! और वह रक्त मेरे मस्तक का होगा।

श्रीधर —मस्तक में सहस्र दल है वत्स, जिसमें ब्रह्म का निवास होता है।

ग्लानि के पोषण के लिए ब्रह्मद्रव की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं यह पूछता हूँ कि इस मूर्खता के धूमकेतु की रेखा कितनी लम्बी जायगी ? मैंने तुम्हारे दोष दिखलाए तो उन्हें स्वीकार करना चाहिए था। यह नहीं कि ग्लानि से दो दिन घर आने का नाम भी न लो ! बेचारी मां को दुखी और चिंतित रक्खो ! उसने तुम्हारे वियोग में दो दिन से भोजन नहीं किया। अब आधी रात में तुम आये हो, तुम्हारे हाथ में यह तलवार है और पिता से तुम अपना मस्तक काटने को कहते हो। मूर्ख पुत्र ! मेरे हृदय में पिता की भावना आज तुमसे लांछित हो रही है।

भारवि—पिता, यह सब स्वीकार करता हूँ। आपसे विवाद करना मुझे और कष्टप्रद होगा। किन्तु मैं अपनी निर्बलता आपके सामने प्रकट करना चाहता हूँ। पिछले दो दिनो का कार्य प्रतिशोध से परिचालित था।

श्रीधर—प्रतिशोध !

भारवि—हां पिता, प्रतिशोध ! आपने मुझे लाछित किया। जब मै शास्त्रार्थ मे विजयी हुआ, आपने मुझे सार्वजनिक रूप से लाछित किया। जिन पण्डितो को मै पराजित करता था, वे ही आपके वाक्यो को लेकर मेरा परिहास करते थे—सभाओ में लाछित करते थे। दो बार जब आपने सब पण्डितो के सामने मेरी निन्दा की तो मै क्रोध और ग्लानि से भर गया। मै घर नही लौट सका। मेरी सारी विजय की उमङ्ग रसातल में चली गई। मैने समझ लिया कि जबतक मेरे पिता वर्तमान है तबतक मै इसी प्रकार लाँछित होता रहूँगा।

श्रीधर—यह सत्य है।

भारवि—मै आत्म-हत्या नहीं कर सकता था क्योकि वह एक जघन्य पाप है। मैने अनेक बार सोचा। पिता को तो पुत्र की उन्नति से

सुख होना चाहिए, किन्तु पिता को मेरी उन्नति से अप्रसन्नता होती है, पिता को मेरे दोष-ही-दोष दीख पड़ते है । वे मुझे लाछित करते हैं । एकांत में लाँछित करते तो मुझे कोई हानि न होती, किन्तु विद्वन्मण्डली मे वे मेरा अपमान करते हैं ।

श्रीधर —मेरा अभिप्राय विद्वन्मण्डली में ही तुम्हारे दोष दिखलाने का रहा है ।

भारवि —जिन पण्डितो ने मेरे ज्ञान को अपने सिर पर पुष्प-माला की भाँति धारण किया, उन्हीं पण्डितो के समक्ष मेरा अपमान मुझे शूल की भांति खटक गया और आपके प्रति मेरा क्रोध अन्तिम सीमा तक पहुँच गया ।

श्रीधर — (मुस्करा कर) अंतिम सीमा तक । फिर तुमने क्या किया ?

भारवि —म पूरे आठ प्रहर तक मन-ही-मन जलता रहा । फिर मैंने यही ठीक समझा कि मै पिता के जीवन को समाप्त कर दूँ ।

श्रीधर —हाँ पिता के ? कितना अच्छा होता कि मुझे अपनी मृत्यु पुत्र के हाथो मिलती ।

भारवि —मैंने अपने मित्र विजयघोष के शस्त्रागार से यह पैनी तलवार चुनी जिसकी तीखी धार के स्पर्शमात्र से जीवन का सूक्ष्म तन्तु बिना किसी शब्द के क्षण मात्र में ही कट जाता । मै सध्या से ही इस घर के कोने मे छिपा हुआ था । जब आधी रात में माताजी और आप निद्रा मे लीन रहते तो मै दबे पाव आकर आपकी ग्रीवा पर यह तलवार रख देता । माताजी को भी ज्ञात न होता कि वे जीवन की किस दिशा मे चली गई है । प्रात काल जब उन्हे ज्ञात होता और नगर में यह बात फैलती तो म भी आता । मेरा प्रायश्चित्त यह होता कि जीवन भर माता की कठिन सेवा कर उन्हे वैधव्य के कष्ट का अनुभव न होने देता ।

श्रीधर —फिर तुमने क्यो नहीं किया ? यह कार्य तो तुम अब भी

कर सकते हो !

भारवि —पिता ! मुझे और अधिक लाछित न कीजिए । मेरी ग्लानि को अधिक न बढाइए। हाय रे, माता का हृदय, वे क्षणमात्र भी न सो सकीं । आपको छेडती रहीं । उन्होने आपको सोने न दिया और जब बातो-ही-बातो में मुझे यह ज्ञात हुआ कि आपकी—आपकी यह पुत्रवत्सलता ही है कि आप पण्डितो के बीच मेरी निदा कर मेरे गर्वांकुर को नष्ट करते है, मेरे अहङ्कार को दूर कर मेरी अधिकाधिक उन्नति चाहते है तो मुझपर वज्रपात हुआ। मेरा सारा क्रोध पानी बन कर मेरी आखो से अश्रु-धारा के रूप में निकल पडा। ओह पिता, आप कितने महान् है ! प्रतिदिन मेरी उन्नति के अभिलाषी ! मेरे अहङ्कार को दूर कर मुझे साधना के पथ पर बढाने वाले पिता ! म पापी हूँ। पितृ-हत्या से प्रतिशोध लेने वाला यह नारकीय पुत्र आज प्रायश्चित्त-रूप मे अपना मस्तक कटवाने की भिक्षा मागता है। (एक सिसकी)

श्रीधर —शान्त, शान्त ! किन्तु न तो मै प्रतिशोध लेता हूँ और न भिक्षा देता हूँ ।

भारवि —फिर भी मै दण्ड चाहता हूँ ।

श्रीधर —किन्तु मूर्ख, पितृ-हत्या का दण्ड पुत्र-हत्या नहीं है ।

भारवि —फिर भी शास्त्र की आज्ञानुसार जो दण्ड हो, वही दीजिए।

श्रीधर —किन्तु मैने तुम्हें क्षमा किया वत्स। दण्ड की व्यवस्था पाप के स्थिर रहने मे है। जब यह पाप स्थिर नहीं रह सका तब दण्ड को आगे बढने की आवश्यकता नहीं है ।

भारवि —आपसे शास्त्रार्थ करना मेरी अल्पज्ञता है, पिता ! पाप के लिये न सही, मेरे प्रायश्चित्त के लिये भी तो कुछ व्यवस्था होनी चाहिये ।

श्रीधर —तेरे लिये पश्चात्ताप ही प्रायश्चित्त है ।

भारवि —आप महान् हैं, पिता ! किन्तु जबतक आप प्रायश्चित्त की व्यवस्था मेरे लिये न करेंगे तबतक मेरे जीवन में एक ऐसी आग लगी रहेगी जिसका बुझाना मेरे लिये असम्भव होगा। पिता अपनी पुत्र-वत्सलता मे अडिग रहे और पुत्र पितृ-हत्या का निश्चय कर भी अदण्डित रहे ? मेरे लिये यह क्षमा असह्य होगी।

श्रीधर —माता की सेवा कर असह्य को सह्य बनाओ।

भारवि —पिता, माता की सेवा तो मेरे जीवन की चरम साधना है ही, किन्तु यदि आप चाहते हैं कि आपका भारवि जीवित रहे तो उसे दण्ड दीजिए।

श्रीधर —पुत्र यदि जीवन को दण्ड समझ ले तो क्या हानि है ?

भारवि —पिता, मैं जीवन को दण्ड नहीं समझना चाहता। यह ब्रह्म की विभूति है। इसे चिन्ता मे घुलाना, पाप मे लपेटना, दुख में बिलखाना सबसे बडा अपराध है। इससे तो अच्छा है कि मैं आपकी अनुमति से दण्ड-स्वरूप आत्महत्या-जैसे जघन्य पाप

श्रीधर —(बीच ही) भारवि !

भारवि —पिता ! मेरे मन की शान्ति के लिये आप शास्त्रानुसार दण्ड की व्यवस्था दे।

श्रीधर —छ मास तक श्वसुरालय में जाकर सेवा करना और जूठे भोजन पर अपना पोषण करना।

भारवि —छ मास तक श्वसुरालय मे जाकर सेवा करना और जूठे भोजन पर अपना पोषण करना। बस ठीक, आज से मेरा यह प्रायश्चित्त प्रारम्भ हुआ। यह लीजिए तलवार (फेंक देता है।) इसे आप कृपया मेरे मित्र विजयघोष के पास पहुचा दीजिए और मुझे इस प्रायश्चित्त की पूर्ति की आज्ञा दीजिए।

श्रीधर —किन्तु यह प्रायश्चित्त इसी क्षण से क्यो प्रारम्भ हो ?

(नेपथ्य में 'बेटा, यह गरम-गरम भोजन जल्दी से कर ले' (धीरे-धीरे पास आती हुई) तू बहुत भूखा होगा। जल्दी से भोजन कर ले।)

सुशीला—(पास आकर) ला, तुझे मैं अपने हाथो से खिलाऊं।

भारवि—नहीं, माँ ! मुझे जूठा भोजन चाहिये।

सुशीला—(आश्चर्य से)—जूठा भोजन !

भारवि—हाँ माँ, आज से छ मास तक जूठा भोजन ही मेरा खाना है।

सुशीला—(आश्चर्य से)—छ महीने ?

भारवि—तूने भी तो भोजन नहीं किया है।

सुशीला—बेटा, तू खा ले ! मेरी आत्मा को तृप्ति हो जाएगी। मैं जी जाऊँगी।

भारवि—नही, पहले मैं अपने हाथो से तुझे एक ग्रास खिला दूँ।

सुशीला—पहले तू खा ले।

भारवि—नही माँ, मेरी प्रार्थना मान ले। मैं तुझे खिला दूँ।

सुशीला—(ग्रास लेकर) धन्य मेरे लाल, अब ले तू खा ले।

भारवि—नही माँ, मुझे क्षमा कर। छ महीने बाद तुम्हारे इन हाथो से भोजन करूँगा।

सुशीला—छ महीने बाद ! यह बात क्या है ? देखिये, (श्रीधर की ओर) यह छ महीनो की बात कैसी !

श्रीधर—(गम्भीर स्वर में)—यह उसका प्रायश्चित्त है।

सुशीला—प्रायश्चित्त ! कैसा प्रायश्चित्त ?

भारवि—यह पिताजी स्पष्ट करेंगे। अब मुझे देर हो रही है। पिता जी, आज्ञा दें। माता आज्ञा दीजिए—आप दोनो के चरणो की धूल सिर पर रख लू। अब मैं अपने आपसे प्रतिशोध लूँगा। माता, प्रणाम। पिता, प्रणाम !

सुशीला—भारवि, मेरे लाल !
श्रीधर —गया भारवि।
सुशीला—मेरे लाल, लौट आओ !

(नेपथ्य में भारवि का स्वर—प्रतिशोध ! प्रतिशोध !)



श्री उदयशंकर भट्ट

आपका जन्म सन् १८९७ मे इटावा मे हुआ । कई प्रान्तो में शिक्षा प्राप्त करने के बाद लाहौर चले गये । वही आप बँटवारे के पूर्व तक अध्यापन का कार्य करते थे । उसके बाद दिल्ली चले आये । तब-से आल इण्डिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन पर काम कर रहे हैं । इस समय आप सलाहकार के पद पर है ।

आप केवल नाटककार नही है, बल्कि कवि, आलोचक और उपन्यासकार भी है । सबसे पहला एकांकी 'दस हजार' १९३८ मे प्रकाशित हुआ था । तबसे अनेक सुन्दर नाटको और एकाकियो की रचना कर चुके हैं और कर रहे हैं ।

डा० रामकुमार वर्मा के शब्दो मे—"(आपके) एकांकियो में मनोभाव बडी सरलता मे स्पष्ट हो जाते है । पात्रो के अनुरूप भाषा की सृष्टि मे तो सिद्धहस्त हैं । घटनाओं मे कौतूहल चाहे न हो, किन्तु स्वाभाविकता के साथ जीवन के चित्रों को स्पष्ट करने में भट्टजी ने विशेष सफलता प्राप्त की है ।"

आपको विशेष सफलता गीति और भाव-नाटक लिखने मे मिली है । रेडियो-विधान के अनुकूल भी आपने अनेक नाटक लिखे है । मूलत. कवि होने के कारण आपकी नाट्य-कला मे कल्पना और यथार्थ का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

बीमार का इलाज



पात्र-परिचय

चन्द्रकांत . आगरे का एक रईस, जो अंग्रेजी सभ्यता व रहन-सहन का प्रेमी है। एकदम भारी-भरकम, उम्र ४५ वर्ष।

कांति . चन्द्रकांत का बड़ा पुत्र। उम्र लगभग २१-२२ वर्ष।

विनोद : कांति का समवयस्क मित्र।

शांति : कांति का छोटा भाई।

सरस्वती : कांति की मां, अपने पति से सर्वथा भिन्न, दुबली-पतली, पुराने विचारों की।

प्रतिमा : कांति की बहन—एकदम मोटी, उम्र २४ वर्ष।

डा० गुप्ता, डा० नानकचन्द, वैद्य हरिचन्द, बूढ़ा और सुखिया, पण्डित, पुजारी इत्यादि।

(आगरे में कांति के पिता मि० चन्द्रकांत की कोठी का एक कमरा। कमरे की सजावट एक सम्पन्न परिवार के अनुरूप—सोफा सेट, कुर्सियाँ, तिपाई इत्यादि सभी वस्तुएं मौजूद है—पर नौकर पर निर्भर रहने तथा रूढिवादी गृह-स्वामिनी के कारण स्वच्छता, सलीके का अभाव, दरी पर बिछी हुई चादर काफी मैली है। जिस समय का यह दृश्य दिखाया जा रहा है, उस समय सवेरे के आठ बजे हैं। कांति का मित्र विनोद बिस्तर पर लेटा है। उसे अचानक रात में ज्वर हो गया, लगभग १०४ डिग्री। कड़ी काठी होने के कारण वह लापरवाही से कभी उठकर बैठ जाता है और कभी उठकर टहलने लगता है। वह अपने भीतर से यह विचार निकाल देना चाहता है कि उसे ज्वर है, फिर भी ज्वर की तेजी उसे बेचैन कर देती है और वह लेट जाता है। कुछ देर बाद कांति 'नाइट ड्रेस' मे कन्धे पर तौलिया डाले चप्पलियाँ फटफटाता, सीटी बजाता बाये दरवाजे से कमरे में आता है।)

कांति —हलो विनोद, अमा अभी तक चारपाई से चिपटे हो—आठ बज रहे हैं। क्या भूल गए, आज गाव जाना है ? मैं तो स्वय देर से उठा, वरना मुझे कबतक तैयार हो जाना चाहिए था। लेकिन तुमने तो कुम्भकर्ण के चाचा को भी मात कर दिया, यार ! (पास जाकर) क्या बात है ? खैर तो है ?

विनोद —रात न जाने क्यो बुखार हो गया (हाथ फैलाकर) देखो ?

कांति —(देह छूकर) ओह, सारी देह अगारे की तरह दहक रही है।

विनोद —कम्बख्त बुखार कैसे आ धमका ?

कांति —यार, इस बुखार ने तो सारा मजा किरकिरा कर दिया। इलाहाबाद से म तुम्हे कितने आग्रह से छुट्टियां बिताने के लिए यहां आगरे लाया था—सोचा था, कुछ दिन यहां घर में आनन्द-मौज करेंगे और फिर खूब गाव की सैर करेंगे।

विनोद —मालूम होता है, मेरे भाग्य मे गाव की सैर नहीं लिखी है। ये छुट्टियां बेकार ही गई ।

कांति —गाव का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है। इस दशा मे तुम्हारा गाव जाना असम्भव है । सोचता हू, मैं भी न जाऊं, पर जाये बिना काम भी तो नही चलेगा। कल चाचाजी शायद मुकदमे के लिए बाहर चले जायेंगे, न जाने कबतक लौटें ! कहो तो मैं अकेला ही हो आऊ—इफ यू डोण्ट माइण्ड !

विनोद —नहो, नहीं, तुम हो आओ। उन्होंने आग्रह करके बुलाया है, हो आओ। मे ठीक हो जाऊगा। कोई बात नही।

कांति —तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। डाक्टर आ जायगा। पिता-माता सभी तो हे। म शाम को ही लौटने का यत्न करूगा।

विनोद —नहीं, नही, मामूली बुखार है, ठीक हो जायगा । जाओ।

(कांति के पिता चन्द्रकांत का प्रवेश)

चन्द्रकांत—(दूर से) किसको बुखार है, बेटा कांति ? अरे इतनी देर हो गई, तुम अभी तक गाव नही गये। धूप हो जायगी। धूप, धूल और धुआ इनमे तीन न सही, दो ही आदमी के प्राण निकालने को काफी हे। उसपर घोड़े की सवारी—न कूदते बने न सीधे बैठते। बुखार किसे हो गया बेटा ?

कांति —बाबूजी, विनोद को रात बुखार हो गया। देह तवे की तरह गरम है। डाक्टर को बुलाना है। ऐसे में इसका जाना ?

चन्द्रकांत—हे, हे, विनोद कैसे जा सकता है ? और फीवर, जगल में आग की तरह उद्दण्ड ? अभी डाक्टर को बुलाकर दिखा देना होगा । मैने निश्चय कर लिया है, डाक्टर भटनागर

अब इस घर में क़दम नहीं रख सकता। उसने प्रतिमा का केस खराब कर दिया था। बुखार उससे उतरता ही न था। यह एक दम बकरे के थन की तरह निकम्मा सिद्ध हुआ। वैसे पूछो तो उस बिचारे का कसूर भी नहीं था, दवा तो उसने एक-से-एक बढ़िया दी; पर इससे क्या, बुखार तो नहीं उतरा। टाइफाइड को छोडकर चाहे उसका बाप भी क्यो न हो, उसे कुछ-न-कुछ तो उतरना ही चाहिए। डाक्टर गुप्ता ने आते ही उतार दिया। अब तो गुप्ता ही मेरा फैमिली डाक्टर है। गुप्ता को बुलाओ। सुखिया, ओ सुखिया, जा जरा डाक्टर गुप्ता को तो बुला ला। कहना—वह काति के मित्र है न, जो प्रयाग से आये है, उन्हें बुखार हो गया है; जरा चलकर देख लीजिये। बाबूजी ने कहा है। बेटा, मान गया मै तो

त —डा० भटनागर मे मेरा 'फेथ' कभी नहीं रहा बाबूजी, लेकिन डा० नानकचन्द भी कम नही है। विनोद को उसे दिखाना ही ठीक होगा। न जाने उसके हाथ मे कैसा जादू है। मेरा तो दिन-पर-दिन 'होमियोपैथी' मे विश्वास बढ़ता जा रहा है।

चन्द्रकात—(कमरे मे टहलते हुए) मेरे बच्चे, तुम पढ़-लिखकर भी नासमझ ही रहे। बिना अनुभव के समझदार और बच्चे मे अन्तर ही क्या है। अरे होमियोपैथी भी कोई इलाज है! चाकलेट या मीठी गोलिया न दी, होमियोपैथिक दवा दे दी! याद रखो, बडो की बात गाठ बाध लो—जब इलाज करो, ऐलोपैथिक डाक्टर का इलाज करो। 'कडवी भेषज बिन पिये, मिटे न तन को ताप'। ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए है। कहते क्यो नहीं विनोद बेटा?

विनोद —जी! (करवट बदल लेता है)

चन्द्रकांत—ये वैद्य-हकीम क्या जानें, हरड़-बहेडा और शरबत-शोरबे के पण्डित !

कांति —मैं चाहता हूं आप इस मामले में

चन्द्रकांत—नहीं, यह नहीं हो सकेगा । मैं जानता हूं विनोद का भला इसी में है ।

(सुखिया का प्रवेश)

सुखिया —सरकार वो बाबू आये है ।

चन्द्रकांत—अबे कौन बाबू, नाम भी बतायेगा या यो ही .

सुखिया —वही जो उस दिन रात को आये थे ।

चन्द्रकांत—लो और सुनो, गधो से पाला पड़ा है ।

सुखिया —वह बाबू सरकार

चन्द्रकांत—कह दे, आता हू । और मैंने तुझे डाक्टर के पास भेजा था । जल्दी जा (स्वयं भी चला जाता है)

कांति —तुम घबराना मत । मैं डाक्टर नानकचन्द को बुलाकर लाऊंगा । अव्वल तो मेरा ख्याल है, शाम तक बुखार उतर जायगा । अच्छा विनोद, देर हो रही है चलू । अभी मुझे बाथ-रूम भी जाना है ।

विनोद —हा, हा, तुम जाओ । मैंने बुखार की कभी परवाह नहीं की है, कान्ति । उतर जायगा अपने-आप । शाम तक लौटने की कोशिश करना ।

कांति —अवश्य, अवश्य, तुम्हारे बिना मेरा मन भी क्या लगेगा । लेकिन जाना जरूरी है । अच्छा, विश यू आल राइट ।

(सीटी बजाता चला जाता है)

विनोद —नमस्कार । (करवट बदल कर लेट जाता है)

(कांति की मा सरस्वती का प्रवेश)

सरस्वती—(कमरे मे घुसते ही) विनोद, क्या बात है ? उठो चाय वाय तैयार है । कुछ खाओ पियो । (पास जाकर) क्या बात है,

खैर तो है ? कुछ तबियत खराब है क्या ? (पलग के पास जाकर विनोद को छूकर) श्राय-हाय ! देखो तो कितना बुखार है ! मुंह ईंगुर-सा लाल हो रिया है बिचारे का— घबराश्रो मत बेटा, मै श्रभी वैद हरिचन्द को बुलाती हू। देखकर दवा दे जायगे। बडे काबिल वैद है, विनोद। जरा कपडा श्रोढ लो न। (उढाती है) जैसा कांति वैसा ही तू। मेरे लेखे तो दोनो एक हो। क्या सिर में कुछ दर्द है ! (हाथ फेर कर) कब्जी होगी। श्रभी ठीक हो जायगी। सुखिया, श्रो सुखिया। न जाने कहा मर गया। इन नौकरों के मारे तो नाक में दम हो गया है। श्ररे शांति, श्रो शाति। (शाति श्राता है) देख तो बेटा, जा हरिचन्द वैद जी को बुला ला, देखकर दवा दे जायगे। भैया वैद हो तो ऐसा हो

विनोद —माताजी, बाबू जी ने डाक्टर गुप्ता को बुलाया है। शायद काति ने डाक्टर नानकचन्द के लिए कहा है।

सरस्वती—लो श्रौर सुनो, इनके मारे भी मेरा नाक में दम है। उस मरे डाक्टर को न कुछ श्रावे है, न जावे है। न जाने क्यों डाक्टर गुप्ता के पीछे पडे रहे हैगे। क्या नाम है उस मरे भटनागर का ? इन दोनो ने तो छोरी को मार ही डाला था। वह तो कहो, भला हो इन वैद जी का, बचा लिया। जा बेटा शाति, जा तो सही जल्दी।

शान्ति —जाऊं हू मां। (चला जाता है)

सरस्वती—श्ररी प्रतिमा, श्रो प्रतिमा, (दूर से ही श्रावाज़ श्राती है— (हा मा क्या है ?") देख जरा मन्दिर में पण्डितजी पूजा कर रहे है। उनसे कहियो, जरा इधर होते जाय। श्रौर देख, उनसे कहियो, मार्जन का जल लेते आवें, विनोद भैया बीमार है। मैंने घर मे ही मन्दिर बनवाया है बेटा !

विनोद —(उत्सुकता से करवट बदल कर) पण्डितजी का क्या होगा यहा मां ?

सरस्वती— बेटा, जरा मार्जन कर देंगे। अपने वो पण्डितजी रोज पूजा करने आवे हैं। मार्जन कर देंगे सारी। अला-गला दूर हो जायगी। तुम पढ़े-लिखे लोग मानो या न मानो, पर मैं तो मानूँ हूगी भैया ? पिछले दिनो प्रतिमा बीमार थी। समझ लो पंडित जी के मार्जन से ही अच्छी हुई। मैंने कथा में एक बार सुना था—बुखार-उखार तो नाम के हैं, असली तो ये ग्रह, भूत ही हैं जो बुखार बनकर आ जाय हैं। सिर दबा दू क्या बेटा ? जैसे कांति वैसे तुम। तबतक न हो थोड़ा-सा दूध पी लो। अरी मिसरानी, ओ मिस-रानी ? (दूर से आवाज—'आई बहू जी') अरी देख थोडा दूध तो गरम कर लाइयो।

विनोद —दूध तो मैं नहीं पीऊंगा, माताजी।

सरस्वती (चिल्लाकर) अच्छा रहने दे। (विनोद से) क्या हर्ज है, थोडी देर बाद सही। जरा ओढ़ लो, म अभी आई। (जैसे ही जाने लगती है वैसे हां मार्जन का जल, दूर्वा लेकर पण्डितजी, कमरे में आते हैं। सरस्वती पण्डितजी से) देखो पण्डित जी, तुम्हारी पूजा से प्रतिमा जी उठी थी। याद है न ? मेरे कांति का मित्र है। देखो एक साथ पढे है। तुम्हें नहीं मालूम आज-कल वो आया है न ! चाचा ने बुलाया है, आज गाव जा रिया है। विनोद भी जा रिया था, पर इस बिचारे को बुखार हो गिया। जरा मन्त्र पढ़कर मार्जन तो कर दो।

पण्डितजी—क्यो नहीं, बहूजी, मन्त्र का बडा प्रभाव है। पुराने समयो में दवा-दारू कौन करे था। बस, मन्त्राभिसिक्त जल से मार्जन करा के बीमारी गई। तुम तो बीमारी की कहो हो,

यहां तो मरे जी उठे ये मरे, जिनके जीने का कोई सवाल ही नहीं उठे था। (आंखें मटकाकर) हां ऐसा था मन्त्र का प्रभाव ।

सरस्वती—सच कहो हो पण्डितजी, जरा कर तो दो मार्जन । वैसे मैंने अपने उन वैदजी को भी बुलाया है । शान्ति गया है बुलाने ।

पण्डितजी—तभी, तभी, मैं भी कहूं आज शान्ति बाबू नहीं दिखाई दिये। ठीक है, एक शत्रु पर जब दो पिल पड़े तो वह कैसे बचकर जायगा। अच्छा ये कांति बाबू के दोस्त हैं ! अच्छा है भैया, खुश रहो, पढ़ो-लिखो, धर्म में श्रद्धा रखो—हम तो ये कहे हैं। क्यों बहूजी ?

सरस्वती—हां और क्या, पर आजकल के ये पढ़े-लिखे कुछ माने तब न, ? तुम्हारे उन्हीं को देख लो, कुछ दिनों से डाक्टरों के चक्कर में पड़े हैं। मैं कहूं हूं, अपने बुजुर्गों की दवाइयां क्यों छोड़ी जाय ! जब ये डाक्टर नहीं थे तब क्या कोई अच्छा नहीं होवे था ? सभी ठीक होय थे । अब न जाने कैसा जमाना आ रिया है !

पण्डितजी—जमाना बड़ा खराब है, बहूजी ! देवता, ब्राह्मण और गौ पर तो जैसे श्रद्धा ही न रही।

सरस्वती—अच्छा पण्डितजी, मार्जन कर दो, मैं अभी आई । (चली जाती है। पण्डित मन्त्र पढ़कर विनोद के ऊपर बार-बार जल छिड़कता है । इसी समय डाक्टर को लेकर चन्द्रकांत प्रवेश करता है।)

चन्द्रकांत—हैं हैं, अरे क्या हो रहा है ? (पास जाकर) बस करो, ब्राह्मण देवता, बस करो, (जोर से) अरे, तुम क्या समझते हो इसे भूत है ? रहने दो। न जाने इन औरतों को कब बुद्धि आयेगी। अरे, डाक्टर गुप्ता, आप इधर बैठिये न ।

पण्डितजी—बस, थोड़ा ही मार्जन रह गया है, बाबूजी।
(मार्जन करता है)

डा० गुप्ता—महाराज, क्यों मारना चाहते हो बीमार को। निमो-निया हो जायगा, निमोनिया। (पण्डित डाक्टर के कहने पर भी मार्जन किये जाता है) अटर न्यूसेन्स, मिस्टर चन्द्रकान्त !

चन्द्रकात—(कड़क कर) बस रहने दो। सुनते नहीं, डाक्टर गुप्ता क्या कह रहे है ? निमोनिया हो जायगा।

पण्डितजी—जैसी आपकी इच्छा। मेरा तो विचार है कि विनोद बाबू का इतने मे ही बुखार उतर गया होगा। (चला जाता है)

डा० गुप्ता—मन्त्रों से बीमारी अच्छी हो जाती तो हम क्या भाड झोंकने को इतना पढ़ते ! न जाने देश का यह अज्ञान कब दूर होगा ! (डाक्टर खाट के पास खड़ा होकर विनोद को देखता है।) बुखार तेज है। जीभ दिखाइये। पेट दिखाइये। (थर्मामीटर लगाकर नाडी की गति गिनता है, फिर थर्मा-मीटर देखकर) १०४ डिगरी। कोई बात नहीं, ठीक हो जायगा। दवा लिखे देता हू, डिस्पेन्सरी से मगा लीजियेगा। दो-दो घटे बाद। पीने को केवल दूध । यू विल बी आल राइट विध इन टू आर थ्री डेज़।

चन्द्रकात—डाक्टर गुप्ता, ये कान्ति के दोस्त है। बिचारे उसके साथ मेरे को आये थे।

डा० गुप्ता—ठीक हो जायगे। बेचैनी मालूम हो, बुखार न उतरे तो बरफ रखियेगा सिर पर।

चन्द्रकात—ठीक है। (विनोद से) घबराने की बात कोई नहीं। ठीक हो जाओगे, मामूली बुखार है। मै अभी दवा लाता हू।

डा० गुप्ता—मै शाम को भी आकर देख लूगा। अच्छा मिस्टर चन्द्र-कात ! (एक तरफ से दोनो चले जाते है। दूसरी तरफ

से सरस्वती आती है ।)

सरस्वती —क्या हुआ, पण्डितजी चले गये ? मार्जन कर गये ?

विनोद —(चुपचाप पड़ा रहता है)

सरस्वती —(देह छूकर) अब तो बुखार कम है । देखा मंत्र का प्रभाव, मार्जन करते ही फरक पड़ गया । (वहीं से चिल्ला कर) प्रतिमा, ओ प्रतिमा, सुनियो री जरा ।

प्रतिमा —(वहीं से चिल्लाती हुई) क्या है ?

सरस्वती —देख तो पण्डितजी गये क्या । बुखार तो कुछ उतरा दिखाई दे है । उनसे कह जरा और थोड़ी देर मार्जन कर दें । (प्रतिमा जाती है)

विनोद —नहीं रहने दीजिये । वे मार्जन कर गये हैं ।

सरस्वती —क्या हर्ज है, अपने घर के ही पण्डित तो हैं । आधी रात को बुलाओ तो आधी रात को आवें । मखौल है क्या, बीस रुपये महीना, तीज-त्यौहार इसपर आटा-सीधा अलग । तीस तो पडी जाय हैंगे । ऊपर से भी आमदनी हो जायगी ।

(प्रतिमा आती है)

प्रतिमा —पण्डितजी तो गये, अम्मा ।

विनोद —माताजी, मार्जन रहने दीजिये । काफी हो गया ।

(चुप हो जाता है । वैद हरिचन्द शान्ति के साथ आते हैं)

सरस्वती —लो वैदजी आ गये । आओ वैदजी ।

हरिचन्द —क्या बात है बहूजी ? सवेरे-ही सवेरे शान्ति जो पहुंचा तो मैं डर गया । कायदे से किसी आदमी को देखकर वैद्य को खुश होना चाहिये, परन्तु मेरी आदत और ही है, मैं तो चाहता हूं अपनी जान-पहचान के लोग सदा प्रसन्न रहें । हां, क्या बात है ? (संकेत से पूछता है)

सरस्वती —ये कान्ति के साथ पढ़े हैं वैदजी । छुट्टियों में उसीके संग सैर को आया, सो बिचारा बीमार पड़ गया । जरा

देखो तो—

(जसे ही वद नाड़ी देखने को बढ़ता है वैसे ही विनोद बोल उठता है।)

विनोद —डाक्टर गुप्ता भी देख गये हैं, माताजी।

हरिचन्द—फिर मेरी क्या आवश्यकता है, मेरा काम ही क्या है? (एक दम दूर जा खड़ा होता है) मैं ऐसे रोगियों का इलाज नहीं करता। उसी डाक्टर का इलाज करो। और मैं तो राजा भूपेन्द्रसिंह के यहां जा रहा था। सोचा बाबूजी ने बुलाया है तो जाना ही चाहिये।

(लौटने लगता है)

सरस्वती—वैदजी, उनकी भली चलाई। आने दो डाक्टर गुप्ता को। इलाज तो तुम जानो, तुम्हारा ही होगा। मैं क्या कान्ति के मित्र को और बीमार होने दूंगी? नहीं, तुम्हें ही इलाज करना होगा। तुम्हारी ही दवा दी जायगी। चलो देखो। उन मरो ने प्रतिमा को मार ही दिया था। तुम्हीं ने तो बचाया। वाह, यह कैसे हो सके हैगा? इस घर में डाक्टरी नहीं चलेगी।

हरिचन्द—(पास जाकर विनोद को देखते हुए) हां, सोच लो। मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो दवा देने के लिए भागते फिरें। मैं अच्छी तरह जानता हूं, बाबू चन्द्रकांत डाक्टरों के चक्कर में पड़ गये हैं, जो अंग्रेजी दवाइयाँ देकर लोगों को मार देते हैं। (व्यंग से हसकर) ये डाक्टर भी अजीब हैं। देशी बीमारी और अंग्रेजी दवाई! न देश, न काल! (विनोद को देखकर) पेट खराब है। काढ़ा देना होगा। एक गोली दूंगा, काढ़े के साथ दे देना। बुखार पचेगा और ठीक हो जायगा।

सरस्वती—(उछल कर) मैं कह नहीं रही थी, कब्जी से बुखार है।

कहो विनोद, क्या कहा था ? घोड़ी नहीं चढ़े तो क्या बरात भी नहीं देखी ! बहुत-सी बीमारी का इलाज तो म खुद ही कर लू हूंगी ।

हरिचन्द्—बीमारी पहचानने में कर तो ले कोई मेरा मुकाबला । बड़े-बड़े सिविल सर्जन मुझे बुलाते हैं । अभी उस दिन राजा साहब के यहां सारे शहर के डाक्टर इकट्ठे हुए, किसी की समझ में नहीं आ रहा था क्या बीमारी है । मुझे बुलाया गया, देखते ही मैंने झट से कह दिया यह बीमारी है ।

सरस्वती—(वैद की तरफ विश्वास से देखकर) फिर मान गए ।

हरिचन्द्— मानते न तो क्या करते ! वह सिक्का बैठा कि शहर भर मे धूम मच गई । अब रोज जाता हू ।

सरस्वती—आराम आ गया फिर ? भला क्यो न आराम आता । हमारे वैदजी क्या कोई कम हैं ।

हरिचन्द—अभी देर लगेगी । पुराना रोग है । ठीक हो जायगा ।

सरस्वती—अरे, तो आराम नहीं आया ? भला कौन बीमार है ?

हरिचन्द—उनकी बड़ी लडकी ।

सरस्वती—(आश्चर्य) वह गप्पो, क्या वैदजी ? बडी अच्छी लडकी है बिचारी । राम करे अच्छी हो जाय !

हरिचन्द—हाँ । अच्छा, चला । काढा और गोली भेज दूगा । पहले बुखार पचेगा, फिर उतरेगा । उस दिन राजा साहब बोले—वैद्यजी हमने आपको अपने परिवार का चिकित्सक बना लिया है ।

सरस्वती—सो तो है ही । तुम्हे क्या कमी है ! मै तुमसे यही तो कहूँ हू कि हमे तो वैदजी की दवा लगे है । पर न जाने

हरिचन्द्—सस्ती दवा, थोडी फीस, देशकाल के अनुसार । और क्या मै डाक्टरी नही जानता ? मैने भी तो मेटीरिया मेडिका सर्जरी पढ़ी है ।

सरस्वती—सो तो है ही वैदजी ।

(सरस्वती वैद के साथ एक द्वार से निकल जाती है । दूसरे से चन्द्रकान्त मुखिया के साथ दवा लेकर आते हैं ।)

चन्द्रकांत—लो बेटा विनोद, खुराक पी लो । अभी ठीक हो जाओगे ।

(विनोद को उठाकर दवा पिलाता है)

विनोद —अभी वैद हरिचद भी देखने आये थे ।

चन्द्रकांत—(चौंककर) आये थे ? वे मूर्ख वैद ! वह क्या जाने इलाज करना । इन औरतो के मारे नाक मे दम है साहब । दवा तो नहीं पी न ? अच्छा दो-दो घण्टे बाद दवा लेते रहना । पीने को दूध, बस और कुछ नहीं । मै काम से जा रहा हूँ । (जाते-जाते मुखिया से) देख, तू यहाँ बैठ । बाबू की देख-भाल करना भला !

सुखिया —जी सरकार ।

(चन्द्रकान्त चला जाता है)

बाबू मै तो झाड-फूंक मे विश्वास करता हू । हाथ फेरते ही बुखार उतर जायगा । यह ओझा से पानी लाया हूं । दो घण्टे मे बुखार क्या उसका नाम भी न रहेगा। मैंने तो छोटे बाबू से सवेरे ही कहा था—कहो तो ओझा को बुलाऊँ पर वे न माने । कहा, तू पागल है सुखिया । मै चुप हो रहा । क्या करना, गरीब आदमी ठहरा । अभी दो घण्टे मे बुखार का नाम भी न रहेगा बाबू !

विनोद —अरे कही बुखार भी झाड-फूंक से गया है सुखिया ! मै तो गाँव का रहने वाला हू । मैंने तो कही नही देखा कि बुखार झाड-फूंक से उतरता है । जरा पानी तो दो ।

सुखिया —(दरी पर बैठकर तमाखू खाता हुआ) शर्त बद लो शर्त ! और वह ओझा तो वैदगी भी जाने है । हमारे यहा तो कोई भी और कही नही जाय हैगा । वैसे तुम्हारी मर्जी ।

पानी पियोगे ? देता हू। यही पानी पी लो न। किसी को मालूम भी न होगा। न दवा न दारू। (पानी देता है।)

विनोद —(पानी पीकर) नहीं सुखिया, ओझा की कोई आवश्यकता नहीं है। कांति गया क्या ?

सुखिया —गये होगे। घोडी तो दो दिन से खडी थी। अब तो पहुँचने वाले होगे।

(इसी समय सरस्वती कटोरे में काढा और दूसरे हाथ में दवा की गोली लेकर आती है।)

सरस्वती —लो बेटा विनोद, जरा जी कडा करके पी तो लो। ऊपर से ये गोली खा लो । नहीं नही, पहले गोली फिर काढा। मै भी कितनी भुलक्कड हू !

विनोद —दवा तो अभी मैं पी चुका हूँ, माताजी । बाबूजी पिला गये है।

सरस्वती —क्या कहा, दवा दे गये है ? कोई हर्ज नहीं, फायदा तुम्हे इसी दवा से होगा। यह काढा ऐसा-वैसा नही है। एकदम लाभ होगा और मेरा तो तजुर्बा है। प्रतिमा मर रही थी, इन्ही वैदजी ने उसे जिलाया। लो पी तो लो। (कटोरा देती है। विनोद चुपचाप काढा पीने लगता है, इसी समय चन्द्र-कान्त लौट आते है। विनोद को दवा पीते देखकर।)

चन्द्रकांत—यह क्या हो रहा है विनोद ?

सरस्वती —दवा दे रही हूँ और क्या ?

चन्द्रकांत—तुम पागल हो चुकी हो । विनोद डाक्टर गुप्ता की दवा पी चुका है। और उसे और दवा देना !

सरस्वती —सुनो मै नहीं मानती । मै डाक्टर की दवा और डाक्टर दोनो को व्यर्थ समझती हूँ। मालूम नहीं है, प्रतिमा को इस डाक्टर ने मार ही डाला था, वह तो कहो वैद हरि-चन्द ने बचा लिया।

चन्द्रकांत—तुम मूर्ख हो। कहीं डाक्टर मूर्ख होता है ? मूर्ख है ये वैद्य, जो कुछ नहीं जानते । प्रतिमा को तो डाक्टर से लाभ हुआ था।

सरस्वती —बिल्कुल गलत। दवा तो मैं देती थी । मुझे मालूम है, किससे लाभ हुआ उसे।

चन्द्रकात—विनोद, दवा मत पियो, हर्गिज न पियो। वैद्यो की दवा पीना मृत्यु को बुलाना है।

सरस्वती —बेटा, यह काढ़ा पीना बहुत आवश्यक है। इसे बिना पिये तुम्हे लाभ ही न होगा। इन्हें कहने दो । ये ऐसे ही कहते रहे हैं। यदि इन वैदजी की दवा न होती तो प्रतिमा कभी की मर गई होती।

चन्द्रकात—(कटोरा विनोद के हाथ से लेकर) इसे रहने दो। न जाने ससार से मूर्खता कब जायगी ! लो इसे पियो।

सरस्वती —नहीं, यह नहीं हो सके हैगा। तुम्हे मालूम है वैद हरिचन्द की दवा से प्रतिमा मरते-मरते बची है। पराया लडका है बिचारा, कान्ति के साथ सैर को आया है । डाक्टरो के चक्कर मे पडा और बस । मैं हा हा खाती हूँ, इसे डाक्टर की दवा मत दो। रहने दो विनोद, क्या मैं इस घर की कोई भी नही हूँ।

चन्द्रकात—क्या तुम यह नही जानतीं कि औरतो मे बुद्धि थोड़ी होती है। मेरा कहा मानो और विनोद को डाक्टर की दवा पीने दो। अच्छा हो जायगा, सरस्वती !

सरस्वती —देखो जी, तुम क्या बात है मुझे ही सदा दबाते रहते हो। इस घर में कोई भी मेरी नहीं सुने हैगा। (एक दम रोकर) दो और गाली दो, मार लो। (काढा गोली जमीन पर रख कर रोने लगती है। आचल से आसू पोंछती हुई) जैसे मे इस घर की कोई भी नही हूंगो । ई ई ई ई न अच्छी

बात सुने हेंगे न समझ की बात ई ईं ईं ईं (रोती है)

चन्द्रकांत—(हैरान रहकर) अरे तो भगवान्, मैंने तुझे गाली कब दी। मैंने तो यही कहा है कि डाक्टर की दवा से विनोद अच्छा हो जायगा।

सरस्वती—(रोते हुए) ईं ई ई ईं और गाली किसे कहे हेंगे। मुझे मरी को मौत भी तो नहीं आवे है। एक दफा मर जाऊं तो रोज-रोज का झंझट तो जाय। (रोकर) वैद हरिचन्द ने जहर तो नही दिया है, काढा और गोली ही तो दी है। फिर न जाने इतनी जिद क्यो है। मैं क्या कोई इसकी दुश्मन हूँ। (हिचकी भरकर) अच्छा करो तो बुरा होय है। (अकडकर) मैं साफ कह दू हूँ, विनोद पियेगा तो काढा ही, डाक्टर की दवा हरगिज हरगिज नही पियेगा।

चन्द्रकांत—मैं कहता हूँ विनोद डाक्टर की दवा पियेगा।

सरस्वती—मैं कहती हूँ विनोद वैद की दवा पियेगा।

चन्द्रकांत—तुम मूर्ख हो, तुम्हे कोई कहाँ तक समझावे। मैंने दुनिया देखी है। मैं जानता हूँ आजकल किसकी दवा से फायदा होता है। देखो जिद न करो।

सरस्वती—(अडती हुई) देखो मेरी सुनो, घर के मामले मे तुम्हें बोलने का कोई अधिकार नहीं है। विनोद अगर दवा पियेगा तो वैद की। वैदजी अभी तो कह गये हैं कि विनोद का बुखार ठीक हो जायगा। समझे कि नहीं।

चन्द्रकांत—नहीं, नही हरगिज नही। विनोद दवा पियेगा तो डाक्टर की। नहीं तो कोई दवा न पियेगा।

विनोद —इससे तो अच्छा यह है कि मैं कोईंदवा न पीऊ।

सरस्वती—यह कैसे हो सके हैंगा भैया, मैं मर जाऊ। इससे तो अच्छा हैं भगवान् मुझे उठालें। अब इस घर मे मेरी कोई जरूरत नही हैं। हाय राम, दूसरो के सामने भी मेरा अपमान हो

रिया है और तुम देख रहे होगे। (क्रोध से) मैं तो अपना सिर फोड़ लूगी। इस घर में अब मेरी जरूरत ही क्या है। ले पी विनोद !

चन्द्रकांत—(लाचारी में) अच्छा भाई, काढ़ा पी लो, मुझे क्या। अजब परेशानी में जान है इन औरतों के मारे ! तुम लोग कभी कोई नई बात नही सीखोगी । कभी दूसरे का कहना न मानोगी। कभी भला-बुरा न सोचोगी । (अकड़ कर) डाक्टर मेरा चाचा तो नही लगता, लेकिन याद रखो विनोद, जल्दी अच्छा होने के लिए यह आवश्यक है कि तुम डाक्टर की दवा पियो। अच्छा चलो, विनोद के ऊपर ही फैसला रहा। क्यों विनोद ?

सरस्वती —देखा, लगे उसे बहकाने। वह क्या जाने बेचारा। मैं कहू हू एक दिन वैद की दवा देकर तो देखो। लो बेटा, पियो तो सही काढ़ा।

चन्द्रकांत—और मैं दुश्मन हू।

सरस्वती —तुम क्यो दुश्मन होते । राम करे इसके दुश्मन रहे ही नहीं ! पियो तो सही।

विनोद —(दोनो को हाथ जोड़कर) यदि आप मुझे मेरे हाल पर छोड़ दे तो म शाम तक ठीक हो जाऊगा।

दोनो —(चिल्लाकर) यह कैसे हो सकता है। दवा तो तुम जानो पीनी ही पड़ेगी।

विनोद —नहीं नहीं, आप क्षमा करे बाबूजी, म अग्रेजी दवा पीने का आदी नही हू।

सरस्वती —(चिल्लाकर) मैंने कहा था न कि विनोद को वैदजी की दवा से ही आराम होगा।

विनोद —नहीं म वैद्य की दवा भी न पीऊगा । मैं वैसे ही ठीक हो जाऊगा, माताजी।

(उठकर चलने को तैयार होता है । इसी समय कान्ति डाक्टर नानकचन्द के साथ प्रवेश करता है ।)

कांति —आइये डाक्टर साहब, मैंने कहा (पिता को देखकर) विनोद को जरा डाक्टर साहब को भी दिखा दूं । (विनोद की तरफ देखकर) अरे विनोद, तुम तो जा रहे हो। क्या बात है ? सुनो, देखो डाक्टर साहब आये हैं—होमियोपैथिक हैं। सुनो विनोद !

विनोद —मेरा बुखार घूमने से उतरता है कान्ति । मैं घूमने जा रहा हूं। (जाता है)

डाक्टर —ही इज सफरिंग फरहेप्स फ्राम किग्स डीसीज। इनको नींद में घूमने की बीमारी मालूम होती है।

कांति —(चिल्लाकर) बिचारा विनोद ! मैं जाता हूं। शायद वह अपने आपे में नहीं है।

चन्द्रकांत—लेकिन डाक्टर ने तो बुखार की दवा दी है।

सरस्वती —और, वैदजी ने अपच का काढ़ा, डाक्टर साहब।

सुखिया —फायदा तो मेरे लाये पानी से हुआ है। मैं ओझा से फूंकवाकर पानी लाया था ।

डाक्टर —मिस्टर कान्ति, मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम होते हैं, चलो।

सब —(चिल्लाकर) ओ डाक्टर !

(परदा गिरता है)



श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

'अश्क' का जन्म १४ दिसम्बर १६१० को जालन्धर नगर में हुआ। आप कवि, कथाकार, उपन्यास-लेखक, आलोचक तथा नाटककार सभी कुछ है। आपने शिक्षा, पत्र-सम्पादन, आल इण्डिया रेडियो और सिनेमा आदि अनेक क्षेत्रो मे काम करके अनुभव प्राप्त किया है। बीमार हो जाने के कारण बम्बई और उसी के साथ सिनेमा-ससार को छोड़ना पड़ा। स्वस्थ होने के बाद मे इलाहाबाद मे प्रकाशन का काम कर रहे हैं।

पहला एकांकी 'पापी' सन् १६३७ मे 'विशाल-भारत' में प्रकाशित हुआ था। तब से निरन्तर सुन्दर और सफल एकांकियो की सृष्टि कर रहे है। आपके एकाकी मौलिक, सोद्देश्य तथा कलापूर्ण हैं। सुपाठ्य होने के साथ-साथ वे अभिनेय भी है। रंगमंच, सिनेमा और रेडियो तीनो—विधानो पर एकसा अधिकार हैं।

आपकी कला पर साधना और अनुभूति की गहरी छाप है। सजीवता और सहानुभूति आपकी कला के गुण हैं। व्यंगात्मक और रोमैंटिक चित्रण मे विशेष सफल हुए है।

लक्ष्मी का स्वागत



पात्र-परिचय

रौशन	:	एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र		उसका मित्र
भापी	:	उसका छोटा भाई
पिता	.	रौशन का बाप
मा	.	रौशन की माता
अरुण		रौशन का बीमार बच्चा

स्थान—जिला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान।

समय—नौ-दस बजे सुबह।

(दालान में सामने की दीवार से मेज़ लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है। मेज पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं। दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिसपर मामूली छींट का पर्दा लगा है। बायें कोने मे एक दरवाज़ा है, जो सीढ़ियों मे खुलता है। दाईं दीवार मे एक दरवाजा है जो कमरे मे खुलता है, जहां इस वक्त रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तसवीरें कीलों से जड़ी हुई हैं। छत पर कागज़ का एक पुराना फ़ानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की में से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलधार वर्षा हो रही है। वहां की सांय सॉय और मेंह के थपेड़े सुनाई देते हैं।

कुछ क्षण बाद वह खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है, फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है—और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

दाईं ओर के कमरे मे रौशनलाल दाखिल होता है।)

रौशन—(दरवाजे को धीरे से बन्द करके) डाक्टर अभी नहीं आया?

सुरेन्द्र—नहीं।

रौशन—वर्षा हो रही है।

सुरेन्द्र—मूसलधार! इन्द्र का क्रोध अभी शान्त नही हुआ।

रौशन—शायद ओले पड रहे हैं।

सुरेन्द्र—हां, ओले भी पड रहे हैं।

रौशन—भाभी पहुंच गया होगा ?

सुरेन्द्र—हां, पहुंच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले ! बाजारों में घुटनों तक से कम पानी नहीं होगा।

रौशन—लेकिन अबतक उन्हें आ जाना चाहिए था। (स्वयं बढ़कर, खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है) अरुण की तबियत गिर रही है।

सुरेन्द्र—(चुप)

रौशन—उसकी सांस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है, उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है, उसकी आंखें खुली हैं, पर वह कुछ कह नहीं सकता, बेहोश-सा, असहाय-सा चुपचाप बिटर-बिटर ताक रहा है। आंखें लाल और शरीर गर्म है। सुरेन्द्र, जब वह सांस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है। मेरा कलेजा मुंह को आ रहा है। क्या होने को है, सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र—हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जायगा। देखो, दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है।

(दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की सांय-सांय)

रौशन—नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र—(सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

(रौशन बढ़कर खिड़की में देखता है, फिर वापस आ जाता है)

रौशन—सामने के मकान का दरवाजा खटखटाया जा रहा है।

(बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फानूस को देख रहा है।)

—सुरेन्द्र, यह मामूली बुखार नहीं, यह गले की तकलीफ साधारण नहीं, मेरा तो दिल डर रहा है, कहीं अपनी मां की तरह अरुण भी तो धोखा न दे जायगा ? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा, सांस लेने में उसे कितना कष्ट

हो रहा है !

(हवा की सॉय-सॉय और मेंह के थपेड़े)

—यह वर्षा, यह आधी, यह मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है । प्रकृति का यह भयानक खेल, यह मौत की आवाजें

(बिजली जोर से कड़क उठती है । दरवाज़ा ज़रा-सा खुलता है । मा झाकती है ।)

मा —रौशी, दरवाजा खोलो। आओ, देखो शायद डाक्टर आया है।

(दरवाजा बन्द करके चली आती है ।)

रौशन—सुरेन्द्र

(सुरेन्द्र तेज़ी से जाता है । रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भापी प्रवेश करते हैं । भापी के हाथ मे इन्जेक्शन का सामान होता है ।)

डा० —क्या हाल है बच्चे का ?

(बरसाती उतार कर खूंटी पर टागता है और रूमाल से मुह पोछता है ।)

रौशन—आपको भापी ने बताया होगा। मेरा तो हौसला टूट रहा है । कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और सास में तकलीफ हो गई और आज तो वह बेहोश-सा पड़ा है, जैसे अन्तिम सासो को जाने से रोक रखने का भरसक प्रयास कर रहा है ।

डा० —चलो, चलकर देखता हूँ ।

(सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज आती है। मा तेजी से प्रवेश करती है ।)

मा —भापी ! भापी !

(बीमार के कमरे से भापी आता है ।)

मा —देखो भापी, बाहर कौन दरवाजा खटखटा रहा है? (आखो में चमक आ जाती है) मेरा तो ख्याल है, वही लोग आये हैं ।

मैंने रसोई की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिए और बरसातिया पहने

भाषी —वही कौन ?

मा —वही जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी

(ज़ोर-ज़ोर से कुण्डी खटखटाने की निरन्तर आवाज़ आती है। भाषी भागकर जाता है, मा खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है।)

सुरेन्द्र —भाषी कहां है ?

मा —बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

(सुरेन्द्र फिर तेज़ी से वापस चला जाता है। मा एक बार पर्दा उठाकर खिड़की में झांकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में घूमती है। भाषी दाखिल होता है।)

मा —कौन है ?

भाषी —शायद वही हैं। नीचे बिठा आया हूँ, पिताजी के पास, तुम चलो।

मा --क्यों ?

भाषी —उनके साथ एक स्त्री भी है।

(मा जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाजा ज़रा-सा खोलकर देखता है और आवाज देता है—)

सुरेन्द्र —भाषी !

भाषी —हां।

सुरेन्द्र —इधर आओ।

(भाषी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिये खामोशी। केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से

किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर, कमरे में फानूस के हिलने की सरसराहट। डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी बाहर आते हैं।)

रौशन —डाक्टर साहब, अब बताइए।

डाक्टर—(अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन —बहुत नाजुक है ?

डाक्टर—हा !

रौशन —कुछ नही हो सकता ?

डाक्टर—परमात्मा के घर कुछ कमी नही, लेकिन आपने बहुत देर कर दी है। खन्नाक* (Diphtheria) मे तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन —हमें मालूम ही नही हुआ डाक्टर साहब, कल शाम को इसे बुखार हो गया, गले मे भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मै डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाजार मे है—उन्होने गले मे आयरन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और फीवर-मिक्स्चर बना दिया, बस दो बार दवा दी, इसकी हालत पहले से खराब हो गई। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मै भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नही, तब रात को भाषी को भेजा, फिर भी आप न मिले। डाक्टर जीवाराम आये थे, पर मै उनकी दवा देने का हौसला न कर सका और फिर यह झडी लग गई।

(ज़रा कापता है)

—ओले, आधी और तूफान ! ऐसी प्रलयकारी वर्षा तो कभी न देखी थी।

(बाहर हवा की सांय-सांय सुनाई देती है। डाक्टर सिर

---

*Diphtheria—गले का संक्रामक रोग, जिसमें सास बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

नीचा किये खड़ा है, रौशन उत्सुक नज़रों से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज़ के एक कोने पर बैठा छत की ओर जोर-ज़ोर से हिलते फानूस को देख रहा है।)

डाक्टर—(सिर उठाता है) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाभी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान और ट्यूब साथ लेता आया था और मेरा ख़याल ठीक निकला। भाभी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुस्खा लिख देता हूं, यहीं बाज़ार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक में दवा की दो-चार बूंदें टपकाते रहना और एक घंटे में मुझे सूचित करना। यदि एक घंटे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और कर जाऊंगा। इंजेक्शन के सिवा डिफ्थीरिया का दूसरा इलाज नहीं।

रौशन —डाक्टर साहब.. (आवाज भर आती है।)

डाक्टर—घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद ..

रौशन —मैं अपनी तरफ़ से कोई कसर न उठा रखूंगा। सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना, देखो जाना नहीं, यह घर उस बच्चे के लिए वीराना है। यह लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते हैं, सुरेन्द्र!

सुरेन्द्र —तुम क्या कह रहे हो रौशन? उन्हें क्या यह प्रिय नहीं? मूल से ब्याज प्यारा होता है?

डाक्टर—क्या कह रहे हो, रौशनलाल?

रौशन —आप नहीं जानते डाक्टर साहब! यह सब लोग हृदयहीन हैं, आपको मालूम नहीं। इधर मैं अपनी पत्नी का दाहकर्म करके आया था, उधर ये लोग दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र —यह तो दुनिया का व्यवहार है, भाई !

रौशन —दुनिया का व्यवहार इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर है ? मैं उससे नफरत करता हूँ ! क्या ये लोग नहीं समझते कि यह जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी माता-पिता के लाड में पली होती है, फिर उसके मरते ही सगाइयाँ लेकर दौड़ते हैं ! स्मृति-मात्र से मेरा खून उबलने लगता है !

डाक्टर—(चौंककर) देर हो रही है, मैं दवा भेजता हूँ। (भापी से) भापी, चलो।

(डाक्टर साहब और भापी का प्रस्थान)

रौशन —सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड़ कर चला जायगा ? मैं तो इसका मुंह देख कर सन्तोष किये हुए था। उस-जैसी सूरत, उसी-जैसी भोली-भाली आँखें, उसी-जैसे मुस्कराते ओठ, उसी-जैसा सीधा सरल स्वभाव ! मैं इसे देखकर सरला का गम भूल चुका था; लेकिन अब, अब

(हाथों से चेहरा छिपा लेता है)

सुरेन्द्र —(उसे ढकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मरते हुओं को बचा दे, मृतकों को जीवन प्रदान कर दे !

रोशन —(भर्राये गले से) मुझे उसपर कोई विश्वास नहीं रहा। उसका कोई भरोसा नहीं—क्रूर, कठिन और निर्दयी ! उसका काम सताये हुओं को और सताना है, जले हुए को और जलाना है। अपने इस जीवन में हमने किसको सताया, किसको दुःख दिया, जो हमपर ये बिजलियाँ गिराई गईं, हमें इतना दुःख दिया गया !

सुरेन्द्र— दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता

हूँ, भाभी क्यों नहीं आया।

(उसे दरवाज़े के अन्दर ढकेलकर मुड़ता है। दाईं ओर के दरवाज़े से माँ दाखिल होती है।)

माँ —किधर चले ?

सुरेन्द्र —ज़रा भाभी को देखने जा रहा था ?

माँ —क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र —उसकी हालत खराब हो रही है।

माँ —हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया। ये डाक्टर जो न करें थोड़ा है। बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी। अच्छी भली हकीम की दवा हो रही थी, आराम आ रहा था, जिगर का बुखार ही था, दो-दो वर्ष भी रहता है, पर यह डाक्टर को लाए बिना न माना। डाक्टरों को आजकल दिक के बिना कुछ सूझता ही नहीं। ज़रा बुखार पुराना हुआ, ज़रा खांसी आई कि दिक का फतवा दे देते हैं। 'मुझे दिक हो गया है!'—यह सुनकर मरीज़ की आधी जान तो पहले ही निकल जाती है। हमने तो भाई इसलिए कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। आखिर मैंने भी तो पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने।

सुरेन्द्र —डिप्थीरिया ?

माँ —वह क्या होता है ?

सुरेन्द्र —बड़ी खतरनाक बीमारी है, माजी! अच्छा भला आदमी दो-चार दिन के अन्दर खत्म हो जाता है।

माँ —(काँपकर) राम-राम, तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला। उसे ज़रा ज्वर हो गया, छाती जम गई, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र —नहीं-नहीं, वह कैसे हो सकता है। आपसे अधिक वह किसे प्यारा होगा ?

(चलने को उद्यत होता है)

मा —सुनो !

(सुरेन्द्र रुक जाता है।)

मा —मैं तुमसे बात करने आई थी, तुम उसके मित्र हो, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र —कहिए ।

मा —आज वह फिर आये हैं।

सुरेन्द्र —वे कौन ?

मा —सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हारकर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र —माजी

मा —तुम जानते हो बच्चा, दुनिया-जहान का यह कायदा ही है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप को ही देख लो, अभी दाह-कर्म संस्कार के बाद नहाकर साफा भी न निचोड़ा था कि नकोदर वालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद विवाह भी हो गया। और अब तो सुनते हैं, एक बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र —माजी, रामप्रताप और रौशन में कुछ अन्तर है।

मा —यही कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है और यह पढ़-लिख-कर मां-बाप की अवज्ञा करना सीख गया है। और अभी तो चार नाते आते हैं, फिर देर हो गई तो इधर कोई मुंह भी न

करेगा। लोग सौ बातें बनायेंगे, सौ-सौ लाछन लगायेंगे और फिर ऐसा कौन क्वारा है

सुरेन्द्र —तुम्हारा रोशन बिन-ब्याहा नही रहेगा, इसका मै यकीन दिलाता हू ।

मा —यही ठीक है, पर अब यह शरीफ आदमी मिलते है । घर अच्छा है, लडकी अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है और सबसे बढकर यह है कि ये लोग बडे भले है। लडकी की बडी बहन से अभी मैने बाते की है । ऐसी सलीके वाली है कि क्या कहू । बोलती है तो फूल झडते है । जिसकी बडी बहन ऐसी है, वह स्वय कैसे अच्छी न होगी ?

सुरेन्द्र —माजी, अरुण की तबियत बहुत खराब है। जाकर देखो तो मालूम हो ।

मा —बेटा, ये भी तो इतनी दूर से आए है । इस आंधी और तूफान मे कैसे उन्हे निराश लौटा दू !

सुरेन्द्र —तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती है ?

मा —तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि जरा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हो, उन्हे बता दे, इतने म लडके के पास बैठती हूँ ।

सुरेन्द्र —मुझसे यह नहीं हो सकता माजी, बच्चे की हालत ठीक नही, बल्कि शोचनीय है। और आप जानती है, वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान बच्चे में केन्द्रित हो गया है। वह उसे अपनी आंखो मे बिठाये रखता है, स्वय उसका मुह-हाथ धुलाता है, स्वय नहलाता है, स्वय कपडे पहनाता है और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नहीं मै उससे यह सब कैसे कहूँ ?

(बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है। रोशन दाखिल होता है।

बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आखे फटी-फटी-सी।)

रौशन —सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खडे हो ? परमात्मा के लिए जल्दी जाओ ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भाभी आया क्यो नही ? क्षण तो जा रहा है, प्रतिक्षण जैसे डूब रहा है !

(सुरेन्द्र एक बार खिड़की से बाहर देखता और फिर तेजी से निकल जाता है। मा, रोशन के समीप जाती है।)

मा —क्या बात है, घबराये क्यों हो ?

रौशन —माँ, उसे डिप्थीरिया हो गया है।

मा —सुरेन्द्र ने बताया है। (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगो ने मिल-मिलाकर

रौशन —क्या कह रही हो ? तुम्हे अगर स्वय कुछ मालूम नही तो दूसरे को तो कुछ करने दो।

मा —चलो, म चलकर देखती हू।

(बढ़ती है।)

रौशन —(रास्ता रोकता है) नही, तुम मत जाओ। उसे बेहद तकलीफ ह, उसे सास मुश्किल से आता है, उसका दम उखड रहा है, तुम कोई घुट्टी-वट्टी की बात करोगी। तुम यही रहो, मै उसे बचाने की अन्तिम कोशिश करूँगा।

(जाना चाहता है।)

मा —सुनो !

(रौशन मुड़ता है मा असमजस मे है।)

रौशन —कहो !

मा —(चुप)

रौशन —जल्दी-जल्दी कहो, मुझे जाना है।

मा —वे फिर आये है।

रौशन —वे कौन ?

मा —वही सियालकोट वाले !

रौशन —(क्रोध से) उनसे कहो, जिस तरह आये हैं वैसे ही चले जांय।
(जाना चाहता है।)

मा —रौशी !

रौशन —मैं नहीं जानता, मैं पागल हूं या आप ! क्या आप मेरी सूरत नहीं देखतीं ? क्या आपको इसपर कुछ लिखा दिखाई नहीं देता ? शादी, शादी ,शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ! घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी सूझ रही है। आखिर तुम लोगों को हो क्या गया है ? वह अभी मृत्यु शैय्या पर पड़ी थी कि तुमने मेरी साली को लेकर शादी की बात चला दी, वह मर गई, मैं अभी रो भी न पाया कि तुम शगुन लेने पर जोर देने लगीं। क्या वह मेरी पत्नी न थी ? क्या वह कोई फालतू चीज थी ?

मा —शोर मत मचाओ ! हम तुम्हारे फ़ायदे की बात करते हैं, रामप्रताप

रौशन —(चीखकर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो ? अनपढ़, अशिक्षित, गंवार ! उसके दिल कहां है ? महसूस करने का माद्दा कहां है ? वह जानवर है !

मा —तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था

रौशन —वे . .मां जाओ, मैं क्या कहने लगा था ?
(तेजी से मुड़कर कमरे में चला जाता है और दरवाज़ा बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये हुए, खखारते खखारते रौशन के पिता का प्रवेश।)

पिता —क्या कहता है रौशन ?

मा —वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबियत बहुत खराब है।

पिता —(खॅखारकर) **एक दिन में ही इतनी क्या खराब हो गई ? मै जानता हूँ, यह सब बहानेबाज़ी है।**

(ज़ोर से आवाज़ देता है—)

रौशी, रौशी !

(खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज़)

(फिर आवाज़ देता है—)

रौशी, रौशी।

(रौशन दरवाज़ा खोल कर झाकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है, आँखें में उदासी-सी और निगाहों में करुणा।)

रौशन —(अत्यन्त थके स्वर मे) **धीरे बोले, आप क्या शोर मचा रहे है ?**

पिता —**इधर आओ !**

रौशन —**मेरे पास समय नही ?**

पिता —(चीख कर) **समय नहीं !**

रौशन **धीरे बोलिये आप !**

पिता —**मै कहता हू, वे इतनी दूर से आए है, तुम्हे देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे ज़रा एक-दो मिनट बातचीत कर लो।**

रौशन —**मै नही जा सकता।**

पिता —**नही जा सकता ?**

रौशन —**नही जा सकता !**

पिता —**तो मै शगुन ले रहा हू ! इस वर्षा, आँधी और तूफान में मैं उन्हें अपने घर से निराश नहीं भेज सकता, घर आई लक्ष्मी को नही लौटा सकता। लडकी अच्छी है, सुन्दर है, घर के काम-काज मे चतुर है, चार-पॉच श्रेणी तक पढ़ी है। रामायण, महाभारत बखूबी पढ़ लेती है।**

(रोने की तरह रौशन हँसता है।)

रौशन —**हाँ, आप लक्ष्मी को न लौटाइए।**

(खट से दरवाजा बन्द कर लेता है।)

पिता —(रौशन की मा से) इस एक महीने में हमने कितनों को इन्कार किया है, पर इनको कैसे इन्कार करें ? सियालकोट में बड़ी भारी इनकी फर्म है। मैंने महीने भर में अच्छी तरह पता लगा लिया है। हज़ारों का तो इनके यहा लेन-देन है। उन्हे कुछ बहू की बीमारी की ओर से आशंका थी। पूछते थे— उसका देहान्त किस रोग से हुआ ? सो भई मैंने तो यही कह दिया—ठिक-ठिक कुछ नहीं थी, जिगर की बीमारी थी। (गर्व से) लाख हो, रौशन जैसा कमाऊ लड़का मिल भी कैसे सकता है ? बेकारों की फौज दरकार हो तो चाहे जितनी मर्ज़ी इकट्ठा कर लो। उस दिन लाला सुन्दरलाल अपनी लड़की के लिए कह रहे थे—कालेज में पढ़ती है। पर मैंने तो इन्कार कर दिया।

मा —अच्छा किया। मुझे तो आयु भर उसकी गुलामी करनी पड़ती—बच्चे को पूछते होंगे ?

पिता हाँ, मैंने तो कह दिया—बच्चा है, पर माँ की मृत्यु के बाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती।

मा —तो आप हाँ कर दें।

पिता —हाँ, मैं तो शगुन ले लूगा।

(चले जाते है। हुक्के की आवाज़ दूर होते-होते गुम हो जाती है। मा खुशी-खुशी मे घूमती है, कमरे मे भापी आता है और तेज़ी में निकल जाता है।)

मा —भापी !

भापी —मैं डाक्टर के यहाँ जा रहा हू !

(तेज़ी से चला जाता है। बीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।)

सुरेन्द्र —माजी !

मा —क्या बात है ?

सुरेन्द्र —दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

मा —क्या ? ..

(आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है । हवा की साँय-साँय)

सुरेन्द्र —अरुण इस संसार से जा रहा है !

(फानूस टूटकर धरती पर पड़ता है । मा भाग कर दरवाजे पर जाती है ।)

मा —रौशी, रौशी !

(दरवाजा अन्दर से बन्द है ।)

मा —रौशी, रौशी !

रौशन —(कमरे के अन्दर से भर्राये स्वर में) क्या बात है !

मा —दरवाजा !

रौशन —तुम पहले लक्ष्मी का स्वागत कर लो !

मा —रौशी !

. .

(बाईं ओर के दरवाजे के बाहर से खँखारने की और हुक्के की आवाज ।)

पिता —(सीढ़ियों से ही) रौशन की माँ बधाई हो !

(रोशन के पिता का प्रवेश । मा उनकी ओर मुड़ती है ।)

पिता —बधाई हो मैंने शगुन ले लिया !

(कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिये रौशन का प्रवेश)

रौशन —हा, नाचो, गाओ, बाजे बजाओ !

(पिता के हाथ से हुक्का गिर जाता है और मुँह खुला रह जाता है ।)

पिता —मेरा बच्चा ! (वहीं बैठ जाता है।)
मा —मेरा लाल ! (रोने लगती है।)
सुरेन्द्र —माजी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो।

पर्दा

सेठ गोविन्द दास

नाटककार होने से पूर्व सेठ जी मध्य प्रान्त के एक प्रमुख राज-नीतिक नेता है। आपका जीवन अनेक सघर्षों में से गुजरा हैं। गांधी विचार धारा से प्रभावित है। उसी की छाप आपकी कला पर है। सन १९२१ से ही आप कांग्रेस के साथ है।

प्रकाशित और अप्रकाशित लगभग दो दर्जन नाटक लिख चुके है। विषय की दृष्टि से एतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक और समस्या-मूलक सभी प्रकार के नाटक लिखे है। कला पर आदर्शवाद का गहरा प्रभाव है।

सेठ जी ने एकाकी कला में कई प्रकार के प्रयोग किये है। एकपात्री एकाकी (मोनो ड्रामा) भी लिखे है।

आपने कई पत्रो की स्थापना तथा उनका सम्पादन किया है। सिनेमा-ससार से आप परिचित हैं। इधर एक वृहद उपन्यास लिखा है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति रह चुके है।

कंगाल नहीं



पात्र-परिचय

राजमाता	मिलापरी गाव की मालगुजारिन, राजगोड वश की राजमाता
बडे राजा	राजमाता का बडा पुत्र
मझले राजा	राजमाता का मझला पुत्र
छोटे राजा	राजमाता का छोटा पुत्र
बडी रानी	बडे राजा की पत्नी
मझली रानी	मॅझले राजा की पत्नी
राजकुमारी	राजमाता की पुत्री
स्थान	मिलापरी गाव (जिला सागर, मध्यप्रान्त)

नोट इस नाटक की कथा मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता राय-बहादुर हीरालाल ने लेखक को बताई थी । कथा एक सत्य घटना है ।

स्थान : सिलापरी गाँव में राजमाता का घर
समय : सन्ध्या

(एक तरफ को राजमाता के घर की खपरेल परछी दिखाई देती है, जिसके कई खपरे टूट गये हैं। परछी में एक ओर घर के भीतर जाने का दरवाजा दीखता है, जिस के किवाड़ों की लकड़ी भी टूट गई है। यह दरवाजा खुला हुआ है और इसके अन्दर घर के छोटे-से मैले-कुचले कोठे का एक हिस्सा दिखाई देता है। परछी के सामने मैदान है। मैदान के एक तरफ दूर पर गाव के कुछ झोंपड़े दीखते है और दूसरी तरफ खेत का एक हिस्सा, जिसमे छोटी-छोटी विरल सूखी-सी फसल खड़ी है। परछी मे एक फटे बोरे पर राजमाता बैठी है। उनकी उम्र करीब ५० साल की है। रंग सांवला है। मुख और शरीर पर कुछ झुर्रियां पड़ गई है। बाल आधे मे अधिक सफेद हो गये है। शरीर बहुत दुबला-पतला है। शरीर पर वे एक मैली सी लाल बुन्देलखडी सूती साड़ी पहने हैं जो कई जगह से फटी हुई है और जिसमे कई जगह थिगड़े लगे है। राज-माता के पास बड़ी रानी और मॅझली रानी जमीन पर ही बैठी हुई है। दोनो सांवले रंग की है। बड़ी रानी की उम्र करीब पचीस वर्ष और मॅझली रानी की करीब बीस वर्ष की है। दोनो युवतियां होते हुए भी कृश है और उनकी आँखों के चारों तरफ के गढ़ों और सूखे ओठों से जान पड़ता है कि उन्हे पेट भर खाने को नहीं मिलता। दोनों राजमाता के समान ही लाल रंग की साड़ियां पहने है, जो कई जगह से फटी हुई और चिथड़ैली

भी हैं। दोनों के हाथों में मोटी-मोटी लाख की एक-एक चूड़ी है। तीनों में बात-चीत हो रही है। राजमाता की आँखों में आंसू भरे हैं।)

मँझली रानी—कहा तक रंज करोगी मां, और रंज करने से फायदा ही क्या होगा?

राजमाता —जानती हूँ बेटी, पर जानने से क्या होता है, जो बात रंज की है, उसपर रंज आये बिना नहीं रहता।

मँझली रानी—पर मां, जो बात बस की नहीं, उसपर रंज करना व्यर्थ है।

राजमाता —बिना बस की बात ही तो ज्यादा रंज पहुँचाती है।

(घर के भीतर से छोटे राजा और राजकुमारी हाथ में एक-एक तस्वीर लिए हुए आते हैं। छोटे राजा की उम्र करीब बारह वर्ष की है। वह सांवले रंग और ठिगने कद का दुबला-पतला लड़का है। एक मैली और फटी-सी धोती पहने है, जो घुटने के ऊपर तक चढ़ी है। राजकुमारी करीब ८ साल की सांवले रंग की दुबली पतली लड़की है। एक मैली-सी लाल रंग की फटी हुई साड़ी पहने है। साड़ी इतनी फट गई है कि उसके शरीर का अधिकांश हिस्सा साड़ी में से दीखता है।)

छोटे राजा —माँ! (राजकुमारी की ओर इशारा करके) यह कहती है दुर्गावती ने बावन गढ़ जीते थे, मैं कहता हूँ संग्रामशाह ने। फैसला तुम करो, मैं सच्चा हूँ या यह?

राजकुमारी —हाँ, तुम फैसला कर दो, माँ?

राजमाता —बेटा, संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीते थे, दुर्गावती ने नहीं।

छोटे राजा —देखा, मैंने पहले ही कहा था, यह वीरता आदमी कर सकता है, औरत नहीं।

(राजकुमारी उदास हो जाती है)

राजमाता —(राजकुमारी को उदास देखकर) उदास हो गई, बेटी, पर हमारे कुल में तो औरतें आदमियो से कम वीर नहीं हुई। सग्रामशाह ने बावन गढ़ जीते तो क्या हुआ, दुर्गावती उनसे कम वीर नहीं थीं।

बड़ी रानी —हाँ, सग्रामशाह ने बावन गढ जीतकर वीरता दिखाई तो दुर्गावती ने अपने प्राण देकर।

मँझली रानी—हाँ, जीत में वीरता दिखाना उतना कठिन नहो, जितना हार में।

(राजमाता रो पडती है।)

बड़ी रानी —माँ, फिर वही, फिर वही।

छोटे राजा —(राजमाता के पास जाकर उनके निकट बैठकर) माँ, तुम रोती क्यो हो ? मैं सग्रामशाह से भी बडा वीर बनूँगा। उसने बावन गढ जीते थे, मैं बावन शहर जीतूँगा।

राजकुमारी —(राजमाता के पास जाकर) और माँ, मैं दुर्गावती से भी बडी बनूँगी।

छोटे राजा —(सग्रामशाह का तस्वीर दिखाते हुए) देखो माँ, सग्रामशाह से मैं कितना मिलता-जुलता हूँ। अगर मेरी इस फटी धोती की जगह जैसे कपडे ये पहने हैं, वैसे पहना दो मुझे तलवार मँगवा दो, और ऐसा ही घोडा खरीद दो तो मैं अकेला बावन शहर जीत लाऊँ।

राजकुमारी —और माँ, देखो मैं दुर्गावती से कितनी मिलती हूँ। अगर तुम मुझे भी दुर्गावती जैसे कपडे पहना दो, हथियार मँगवा दो और जैसे हाथी पर ये बैठी हैं, वैसा हाथी मँगवा दो तो मैं भी दुर्गावती से बड़ी वीर बन जाऊँ।

(राजमाता के और अधिक आसू गिरने लगते है।)

बड़ी रानी —(छोटे राजा और राजकुमारी को हाथ पकड़ कर उठाते हुए) अच्छा, राजाजी, और बाईजी, मेरे साथ चलो,

मैं तुम दोनो को सब चीजें मँगा दूँगी।

(दोनो को लेकर बड़ी रानी घर के भीतर जाती है। मँझली रानी राजमाता के निकट सरककर अपनी फटी साड़ी से राजमाता के आँसू पोछती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

मँझली रानी—माँ, थोड़ा तो धीरज रखो।

राजमाता —बहुत जतन करती हूँ, बेटी, धीरज रखने के बहुत जतन करती हूँ पर जब इन बच्चो की ऐसी बाते सुनती हूँ, तब तो हृदय मे ऐसा शूल उठता है जैसा भूखे-पेट और नगे-तन रहने पर भी नही। (कुछ ठहर कर) और बेटी एक बात जानती है ?

मँझली रानी—क्या, माँ ?

राजमाता —ये बच्चे ही इन तस्वीरो को लिए घूमते है और ऐसा सोचते और कहते है, यह नही। तेरे मालिक और बड़ी बहू के मालिक भी जब छोटे थे तब वे भी इसी तरह इन तस्वीरो को लिये घूमते और यही सब कहते फिरते थे। और वे ही नही, मेरे मालिक, उनके बाप और उनके पिता, सब यही सोचते और कहते थे।

मँझली रानी—आह ?

(राजमाता लम्बी साँस लेती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

राजमाता —बेटी, संग्रामशाह और दुर्गावती को पीढ़ियाँ बीत गईं। गिरती मे सबने बढ़ती की सोची। बीती को सोचा, भविष्य के लम्बे विचार किये, पर वर्तमान किसी ने न देखा और आज (कुछ रुककर) आज, बेटी, बावन गढ़ के विजेता संग्रामशाह के कुल को बावन छदाम भी नसीब नहीं।

(मॅंझले राजा का खेत की तरफ़ से प्रवेश। मझले राजा की उम्र २२, २३ वर्ष की है। रंग साँवला और शरीर दुबला पतला तथा ठिगना है। एक मैली और फटी-सी धोती को छोड़ कर और कोई वस्त्र शरीर पर नही है। हाथ मे थोड़े से गेहूँ के दाने हैं, जो बहुत पतले पड़ गये हैं। उन्हें देखकर मँझली रानी घर के अन्दर चली जाती है।)

मॅंझले राजा —(गेहूँ के दानों को राजमाता के सामने पटक कर भर्राये हुए स्वर मे) माँ, सब हार मे झिरी पड गई। बीज निकलना भी कठिन है।

राजमाता —(लम्बी सास लेकर) तब तब तो वसूली भी न होगी।

मॅंझले राजा—वसूली वसूली माँ, लगान तो इस साल सरकार ने मुल्तवी कर दिया है।

राजमाता —(एकदम घबडाकर खड होते हुए) मुल्तवी हो गई ?

मँझले राजा—हाँ माँ, आज ही हुक्म आया है।

राजमाता —तो सिलापरी गाँव से जो एक सौ रुपया बचते थे, वे भी न आयेंगे ?

मँझले राजा—इस वर्ष तो नही, माँ।

राजमाता —फिर हम लोग क्या खायेंगे, क्या पियेंगे ?

मॅंझले राजा—पिनसन के सरकार एक सौ बीस रुपया साल देती है न ?

राजमाता —सात जीव एक सौ बीस रुपया साल मे गुजर करेंगे ? महीने में दस रुपये, एक जीव के लिए तीन पंसे रोज ?

मॅंझले राजा—बड़े भाई ने एक उपाय और किया है माँ !

राजमाता —(उत्सुकता से) क्या, बेटा ?

मॅंझले राजा—तुम धीरज रखकर बैठो तो बताऊँ।

राजमाता —(बैठते हुए) जल्दी बता बेटा, मेरा कलेजा मुंह को आ

रहा है।

मँझले राजा—माँ, अकाल के कारण सरकार काम खोला है न ?

राजमाता —हाँ, जहाँ कंगाल काम करते हैं।

मँझले राजा—पर जानती हो माँ, उन्हें क्या मिलता है ?

राजमाता —क्या ?

मँझले राजा—हमसे बहुत ज्यादा। चार रुपया महीना, एक-एक को दो आने रोज।

राजमाता —अच्छा !

मँझले राजा—हम सात हैं। बड़े भाई ने अर्जी दी है कि हम सबको अकाल के काम में जगह दी जाय। माँ, वह अर्जी मंजूर हो गई तो हममें से—एक-एक को दो-दो आने रोज; सुना, दो-दो आने रोज, सबको मिलाकर अट्ठाईस रुपया महीना; तीन सौ छत्तीस रुपया साल, सुना, तीन सौ छत्तीस रुपया साल मिलेगा।

(बड़े राजा का खेत की ओर से प्रवेश। वे अपने भाई से मिलते-जुलते हैं। करीब २८ वर्ष की उम्र है। वेश-भूषा उन्हीं के सदृश है। आकर राजमाता के पास बैठ जाते हैं।)

राजमाता —बेटा, मँझला कहता था कि तूने सरकार को एक अर्जी दी है ?

बड़े राजा —(लम्बी साँस लेकर) हाँ, दी थी माँ !

राजमाता —(उत्सुकता से) फिर क्या हुआ बेटा, मंजूर हो गई ?

बड़े राजा —नहीं।

मँझले राजा—नहीं हुई, तो क्या हम कंगालों से भी बदतर हैं।

बड़े राजा —इसीलिए तो नहीं हुई कि हम कंगालों से कहीं बढ़कर हैं।

राजमाता —बेटा, तेरी बात समझ में नहीं आती।

बड़े राजा —माँ, हमें पेनशिन मिलती है, हम महाराजाधिराज राज-

राजेश्वर सग्रामशाह और महारानी दुर्गावती के कुल के हैं। हमारी बडी इज्जत है। हमारा बडा मान है। हमारी आमदनी चाहे तीन पैसा रोज ही हो, पर हमें कगालो की रोजनदारी, दो आना रोज, कैसे मिल सकती है? हमारी भर्ती कगालो में कैसे की जा सकती है?

(बड़े राजा ठटाकर हँसते है और लगातार हँसते रहते हैं। राजमाता के आँसू बहते है और मँझले राजा उद्विग्नता से बड़े राजा की ओर देखते है।)

यवनिका-पतन



श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

प्रेमीजी मध्य भारत के निवासी हैं। आपका जन्म ग्वालियर में हुआ। अधिकतर लाहौर रहे। वहां से बम्बई सिनेमा-क्षेत्र मे चले गये। आजकल इन्दौर मे हैं। स्वतन्त्र रूप मे लेखन का काम करते हैं।

नाटककार होने से पूर्व प्रेमीजी कवि है इसलिये आपके नाटकों में कवि का आदर्शवाद है पर आपने जहां कोमलता के गीत गाये है वहाँ विद्रोह का स्वर भी उठाया है। वैसे आप गान्धी-युग की भावना के प्रतिनिधि है।

प्रेमीजी की भाषा पुष्ट और काव्यमय है।

आपने अधिकतर ऐतिहासिक नाटक लिखे है पर एकांकियो के क्षेत्र मे आपने सामाजिक समस्याओ पर भी कलम उठाई है। आप कुशल सम्पादक और प्रकाशक भी रहे हैं।

मालव-प्रेम



पात्र-परिचय

जयदेव : मालवगण का सेनापति ।
विजया जयदेव की कुमारी बहन ।
श्रीपाल विजया का प्रेमी ।

स्थान--मालवदेश । काल--विक्रमी संवत् के २५ वर्ष पूर्व ।

(विक्रमी सवत् के प्रारम्भ होने के लगभग २५ वर्ष पूर्व का काल। चम्बल-तट का एक ग्राम। विजया नदी-तट की एक शिला पर बैठी हुई गा रही है। समय रात का प्रारम्भ, विजया की वय १६-१७ वर्ष के लगभग है। उज्वल गौर वर्ण, शरीर सुगठित, लम्बा, अत्यन्त आकर्षक स्वरूप। आखो में आकर्षण के साथ तेज। वेश सुरुचिपूर्ण होते हुए भी उसके स्वभाव के अल्हड़पन को व्यक्त करने वाला। सिर से उत्तरीय का पहलू खिसक भूमि पर गिर गया है। उत्तरीय के अतिरिक्त एक दुपट्टा वक्ष और कन्धे के आसपास लिपटा पड़ा है। लम्बे बाल वायु मे लहरा रहे हैं।)

विजया—(गाना)

जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर ?
जब नयन मे मूदती, वह
छबि दिखा मुझको लुभाता।
जब बढाती हाथ तब
कुछ भी नही है हाथ आता।
धूल मे मिलते अचानक
स्वप्न होकर चूर।
जो निकट इतना वही है
हाय, कितनी दूर !
जो सज्जन बन 'नयन-तारा'
लोचनो में है समाया।
वह गगन का चाद होकर
दूर से ही मुसकराया।

इसलिए थमता नहीं
आसुओ का पूर ।
जो निकट इतना, वही
हाय, कितनो दूर !
पालने में श्वास के है
हर घडी झूला झुलाया ।
क्यो न उसने प्रेम मेरा
आज तक पहचान पाया ।
मैं उसी को प्यार करने
के लिए मजबूर ।
जो निकट इतना, वही है
हाय, कितनी दूर ?

(विजया गीत गाने में तल्लीन है । श्रीपाल आकर उसकी नजर बचाकर उसके पास खड़ा रहता है । श्रीपाल एक बलिष्ठ और सुन्दर नवयुवक है । उसका वेश योद्धा का है । कमर में तलवार, हाथ मे धनुष, कन्धे पर पीछे की ओर तरकश । वय लगभग २५ वर्ष)

श्रीपाल—विजया !

विजया—(गाना बन्द करके खडी होकर, उत्तरीय का पल्ला सिर पर डालती हुई ।) तुम बडे अशिष्ट हो, श्रीपाल !

श्रीपाल—ऐसे कोमल कठ से ऐसे कठोर शब्द शोभा नहीं देते, विजया !

विजया—तुम अपनी सीमा के बाहर जाते हो ?

श्रीपाल—मैंने तुम्हारा अपमान किया है क्या, विजया ?

विजया—अपमान तो नहीं किया ।

श्रीपाल—फिर ?

विजया—यहा एकात में मुझे अस्त-व्यस्त भेष मे देर तक चुपचाप खडे देखते रहना .

श्रीपाल—मैं तुम्हे जीवन-भर देखना चाहता हूँ, विजया !

विजया—(किंचित् लज्जा-मिश्रित क्रोध से) किस अधिकार से ?

श्रीपाल—जिस अधिकार से चांद तुम्हे इस समय देख रहा है।

विजया—दूर रहकर आकाश से ?

श्रीपाल—हा, तुम मेरे जीवन की प्रेरणा हो, स्फूर्ति हो। तुम्हारी स्मृति मेरे रक्त को गति देती है। तुम्हे पाने की इच्छा करना मेरे जीवन का जीवन है—लेकिन तुम्हें पा लेना मेरे जीवन की मृत्यु है।

विजया—उधर देखते हो, श्रीपाल ! कही वर्षा हुई है, इसलिए चम्बल मे जल बढ गया है। धारा के दोनो ओर चट्टाने है। जल को फैलने को स्थान नही मिल रहा। वह कितना जोर कर रहा है ! कितने वेग से आगे बढ रहा है !

श्रीपाल—हमारे-तुम्हारे बीच मे इससे भी बडी चट्टाने है, विजया !

विजया—कौन-सी चट्टाने ?

श्रीपाल—तुम्हारा भाई जयदेव ! उसे अपने कुल का अभिमान है। मै एक साधारण किसान का पुत्र हू और तुम भारत की सुप्रसिद्ध मालव जाति की कन्या हो। आकाश की तारिका की ओर पृथिवी पर पैर रखकर चलने वाला प्राणी कैसे हाथ बढा सकता है ?

विजया—यदि यह तारिका आकाश से उतर कर तुम्हारी गोद में आ गिरे तो ?

श्रीपाल—मै उसे स्वीकार नही करूंगा।

विजया—क्यो ?

श्रीपाल—मै कृपा का दान नहीं चाहता।

विजया—तो चोरी करना चाहते हो, डाका डालना चाहते हो ? डाका डालना तो कायरता नही है ?

श्रीपाल—मै इतना छोटा नहीं बनना चाहता कि मुझे अपनी ही चीज

को, चोरी करनी पड़े ।

विजया—तब तुम क्या चाहते हो ?

श्रीपाल—बदला ।

विजया—किससे ।

श्रीपाल—तुम्हारे भाई से !

विजया—अच्छा तो इसलिए तुमने शस्त्र पकड़े हैं ?

श्रीपाल—जो हल पकड़ना जानता है वह शस्त्र पकड़ना भी जान सकता है ।

विजया—लेकिन उसका उचित प्रयोग करना भी जान पाये तब न ?

श्रीपाल—मानवता का तिरस्कार करने वालों—सृष्टि के चिरन्तन भाव-प्रेम का अपमान करने वालों के विरुद्ध मेरा शस्त्र होगा । जाता हूं विजया ! तुम मेरे जीवन की स्फूर्ति हो—मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ।

(प्रणाम करता है ।)

विजया—तुम जा तो रहे हो, श्रीपाल ! लेकिन मुझे भय है तुम मार्ग भूल जाओगे ?

श्रीपाल—तुम्हारा प्रेम मेरा मार्ग-दर्शक है ।

(श्रीपाल का प्रस्थान)

विजया—(श्रीपाल की ओर देखती हुई) विक्षिप्त युवक !

(विजया कुछ क्षण स्तब्ध-सी खड़ी उसी ओर देखती रहती है जिस ओर श्रीपाल गया है । फिर एक लम्बी सांस लेकर शिला पर बैठ जाती है । कुछ क्षण विचार-मग्न रहकर वही गीत गाने लगती है । गीत आधा ही हो पाता है कि उसका भाई जयदेव प्रवेश करता है । जयदेव भी गौरवर्ण, बलिष्ठ शरीर, बड़ी आखों और रोबदार चेहरे वाला नवयुवक है । सैनिक वेश-भूषा । कपड़ों से उसका सुसम्पन्न होना प्रकट होता है ।)

जयदेव—(विजया के कन्धे पर हाथ रखकर) विजया !

विजया—(चौंककर) ओह, भैया !

जयदेव—चौंक क्यों उठी, बहन !

विजया—मैं डर गई थी !

जयदेव—मालव-कन्या होकर डर का नाम लेती है, विजया !

विजया—मैं शस्त्र की धार से नहीं डरती, सिंह के तीक्ष्ण नखों से नहीं डरती। मैं मनुष्य के शारीरिक बल से नहीं डरती। हिंसा से मैं लड़ सकती हूँ।

जयदेव—फिर डरती किस से हो, लड़ किससे नहीं सकती !

विजया—मनुष्य के प्रेम से। (दीन स्वर में) भैया !

जयदेव—(विजया के मस्तक पर हाथ रखते हुए) क्या बात है, विजया ?

विजया—मैं अपने हृदय पर विजय नहीं पा सकती। प्राणों में आठों पहर ज्वाला जलती है। तुम्हारी वंश-गौरव की दीवार मुझे रोक नहीं सकती। मैं विद्रोह करूंगी।

जयदेव—किससे ?

विजया—तुम्हारे अभिमान से। मेरे भाई मालव-कुल-भूषण जयदेव से !

जयदेव—तुम मुझसे युद्ध करोगी ?

विजया—हां।

जयदेव—जीत सकोगी ?

विजया—अवश्य !

जयदेव—कैसे ?

विजया—अपनी बलि देकर। इस शरीर को—जिसमें ऐसा मालव-रक्त प्रवाहित है, जो मुझे प्रेम के स्वाधीन-प्रदेश में जाने से रोकता है—चम्बल के उद्दाम प्रवाह में प्रवाहित करके।

जयदेव—बहन, तुझे हो क्या गया है ?

विजया—तुम तो सब जानते हो, भैया !

जयदेव—यहां श्रीपाल आया था ?

विजया—हां।

जयदेव—तभी तुम इतनी चचल हो उठी हो ! विजया, तुम्हे एक काम करना पड़ेगा।

विजया—क्या ?

जयदेव—मालव-भूमि को श्रीपाल का मस्तक चाहिए।

विजया—मालव-भूमि को या तुम्हें ?

जयदेव—मुझे नही मालव-भूमि को !

विजया—लेकिन उसे तो तुमसे शत्रुता है मालव-भूमि से नहीं !

जयदेव—वह मेरे अपराध का दण्ड मालव-भूमि को देना चाहता है।

विजया—मालव-भूमि को या मालव-गण को ?

जयदेव—जब विदेशी शासन हमारे देश पर होगा तब क्या कोई जाति पराधीनता से बच सकेगी ?

विजया—विदेशी शासन मालव पर !

जयदेव—हां, जिन शको ने सिंध और सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया है उन्हे श्रीपाल ने मालवा पर आक्रमण करने को आमंत्रित किया है।

विजया—तुम लोगो का अभिमान अपने ही देश मे देश के शत्रु उत्पन्न कर रहा है। तुमने श्रीपाल का अपमान किया है और निराशा उसे शत्रु के पास खींच ले गई है।

जयदेव—जिस जाति ने सदा भारत के अग-रक्षक बनकर आततायियो को देश मे आने से रोका है, जिसने सिकन्दर महान को विश्वविजयी यूनानी सेना को हजारो प्राणो की बाजी लगा कर वापिस लौट जाने को बाध्य किया उसे क्यो न अपने ऊपर गर्व हो ? उसे अपनी सैनिकता एव बल-विक्रम पर अभिमान क्यो न हो ?

विजया—किन्तु जो जाति सैनिक नही है, क्या वह मनुष्य ही नहीं है ?

कार्य-विभाजन नीच-ऊंच की दीवारें क्यों खड़ी करे ?

जयदेव—यह इन बातों पर विचार करने का समय नहीं है।

विजया—एक श्रीपाल का मस्तक लेकर देश की रक्षा नहीं कर सकोगे ?

जयदेव—तू श्रीपाल और देश दो में से किसे चुनेगी ?

विजया—तुम देश और मानवता दोनो में से किसे चुनोगे ?

जयदेव—पराधीनता मानवता का सबसे बडा पतन है !

विजया—और प्रेम ?

जयदेव—जो प्रेम देश की हत्या करे उसका गला घोटना ही होगा ! श्रीपाल मालवा के मार्गों, नदी-पर्वतो से परिचित है। शक सैन्य-सख्या में हमसे अधिक है। उनके पास अपार अश्वारोहिणी दल है, अस्त्र-शस्त्र भी अपरिमित है। यदि उन्हे इस देश की भूमि से परिचित व्यक्ति मिल जाय तो परिणाम हमारे लिए भयकर है। सोचो विजया, उस समय हमारे देश का क्या होगा ?

विजया—तुम मेरी हत्या कर दो भैया !

जयदेव—तो तुम देश के महत्व को नही समझीं। तुम्हारे पिता तुम्हारे दादा और तुम्हारी न जाने कितनी पीढियो ने इस भूमि की रक्षा मे अपना रक्त सींचा है, बहन ! कितनी बहनो ने अपने भाइयो को रणभूमि में विसर्जित किया है—कितनी सुन्दरियों ने यौवन के प्रभात काल में पतियो को स्वर्ग का मार्ग दिखाया है—यह एक विजया या एक श्रीपाल का प्रश्न नहीं है यह देश का प्रश्न है। बोल बहन, तू क्या कहती है ?

(विजया चुप रहती है)

जयदेव—तू सोचना चाहती है, तो सोच ! तू मालव-कन्या है, विजया ! मै अभी आता हूँ।

(जयदेव का प्रस्थान। विजया हतबुद्धि-सी खड़ी रहती है। फिर वही गीत गुनगुनाने लगती है। श्रीपाल प्रवेश

करता है।)

श्रीपाल—विजया !

विजया—अच्छा हुआ तुम आगए, नहीं तो मुझे तुम्हारे पास जाना पड़ता ।

श्रीपाल—हा, मैं आ गया हू। मैंने अपना निश्चय बदल दिया है। मैं तुम्हे अपने साथ ले जाना चाहता हू।

विजया—लेकिन श्रीपाल मैंने निश्चय बदल डाला है।

श्रीपाल—क्या ?

विजया—मुझे तुम्हारा मोह छोड़ना होगा ?

श्रीपाल—फिर तुम मेरे पास क्यो आना चाहती थीं !

विजया—हम बचपन मे एक साथ खेले हैं। अब जीवन का अन्तिम खेल भी तुम्हारे साथ खेल लेना चाहती हू, बोलो। खेलोगे श्रीपाल !

श्रीपाल—अवश्य, विजया !

विजया—तो लाओ, तुम्हारे बलिष्ठ हाथो को मैं अपने उत्तरीय से बांध दू !

श्रीपाल—क्यो ?

विजया—आंख-मिचौनी मे आंखें बन्द करते हैं, लेकिन यह नए प्रकार का खेल है। इसमे हाथ बांधने पड़ते हैं। लाओ, हाथ बढाओ !

(श्रीपाल हाथ बढ़ाता है, विजया उसके हाथ खूब कस-कर बांध देती है। दूसरी ओर से जयदेव का प्रवेश।)

श्रीपाल—(जयदेव को देखे बिना ही) अब आगे ?

विजया—आगे का खेल मेरे भैया खेलेगे। (जयदेव की ओर उगली उठाती है।)

श्रीपाल—विजया, तुम ऐसा छल कर सकती हो, इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी !

विजया—मुझे इस बात का अभिमान है कि अपने प्रियतम को मैंने देश-

द्रोह से बचा लिया।

जयदेव—(श्रीपाल से) तुम मेरे अपराध का दण्ड अपनी मातृभूमि को देना चाहते हो।

विजया—और देश ने तुम्हारे अपराध का दण्ड मुझे देने का निश्चय किया है!

श्रीपाल—जयदेव तुम वीर हो। साहस और पुरुषार्थ के लिए प्रसिद्ध मानव-जाति के गौरव हो, तुम छल द्वारा मुझे बन्धन में बांधना पसन्द करते हो?

विजया—(श्रीपाल से) प्रियतम, मैं अपने अपराध के लिए क्षमा चाहती हू। (गले से हार उतार कर पहनाती हुई) यह मेरे प्रेम का अन्तिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयंवर है। मालव-जाति की परम्परा के विरुद्ध कृषक-कुमार श्रीपाल को मैं वरमाला पहनाती हू। मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही रहूंगी।

श्रीपाल—मेरे हाथ बंधे हुए हैं विजया! मैं तुम्हे कुछ प्रतिदान नहीं दे सकता। अपने प्रेम का कोई प्रमाण नहीं दे सकता।

विजया—प्रेम प्रतिदान नही चाहता। तुम्हारे चरणो की रज मुझे मिल सकती है? मेरे लिए यही अमूल्य निधि है।

(चरण छूती है!)



श्री सत्येन्द्र शरत

श्री शरत नई पीढ़ी के उदीयमान लेखक हैं। देहरादून ज़िले के भगवन्तपुर गांव के निवासी हैं। जन्म १० अप्रेल १९२१ को अमरावती (बरार) में हुआ तथा प्रारम्भिक शिक्षा नागपुर मे। फिर देहरादून और प्रयाग मे पढ़े। १९४१ मे वहीं से एम० ए० किया। टेलीफोन आपरेटर, क्लर्क, सम्पादक रहकर अब बम्बई फिल्म-जगत मे काम कर रहे हैं।

शरत कहानीकार, रेखाचित्र-लेखक तथा उपन्यासकार भी है। रेडियो-एकाकी भी लिखे हैं।

शरत का जीवन संघर्षों से निरतर जूझते रहने वाले व्यक्ति का जीवन है। वही जीवन उनकी कला मे उतर आया है। द्वन्द्व, विद्रोह, दार्शनिकता और उन सबके ऊपर एक अमर आशावाद—ये सब शरत कला के तत्व है। जीवन का दर्द लिये इनका यथार्थवाद निखरता आ रहा है।

शैली में गति है और भाषा में प्रवाह। शरत से बहुत आशायें हैं।

शोहदा



पात्र-परिचय

मालिक	:	होटल का मालिक
आगंतुक ⎫ नवयुवक ⎭		दो हत्यारे
पुलिस इन्स्पेक्टर	:	

(शहर के बदनाम मुहल्ले का एक गंदा छोटा-सा होटल, जिसे होटल न कह बदमाशों और जुआरियों का अड्डा भी कहा जा सकता है। कोई शरीफ आदमी शहर के उस भाग में नहीं जाता—इसी कारण होटल भी सज्जनों के सहवास से वंचित ही रहता है।

समय—एक उदास शाम के छः बजे के लगभग। कमरे के बीच में गोल मेज़ पर पाँच-छः जुआरी बैठे हैं। ज़ोरों से ताश हो रहा है। वे लोग आवाज़ें कर रहे हैं–'छोड़ना नहीं', 'चलो-चलो', 'अच्छा, शो करो'; 'अबे सिर्फ़ दुअन्नी, चवन्नी रख चवन्नी', आदि-आदि।

होटल का मालिक कमरे के उत्तरी कोने में—प्रमुख दरवाज़े के पास—कुर्सी पर बैठा है। उसके सामने एक छोटी-सी मेज है। मेज़ पर टूटी कलम, सूखी दावात और एक घंटी रखी है। वह उचक कर खेल देख रहा है। प्रमुख दरवाज़ा बन्द है।

सहसा प्रमुख द्वार पर बाहर से खटखटाहट होती है। यह आवाज मालिक को चौंका देती है और खिलाड़ियों की तन्मयता में बाधा उपस्थित करती है।)

मालिक —(भीत कण्ठ में) कौन ?

आगंतुक —(जिसकी आवाज भर सुनाई दे रही है) मैं हूं एक ग्राहक। ज़रा जल्दी दरवाज़ा खोलो—जल्दी SSS

(मालिक खिलाड़ियों की ओर अपना पेटेंट संकेत करता है। वे झटपट ताश छिपा लेते हैं और निश्चिन्त भाव से बैठ जाते है। मालिक बीड़ी सुलगाता है और आगे बढ़ दरवाज़ा खोलता है।

एक ढलते-से युवक का प्रवेश। कमीज़, धोती और फटे-से कोट में। दाढ़ी बढ़ी हुई। वस्त्र और चेहरा बतला रहे हैं कि वह निर्धनता का सताया हुआ

है। घबराई मुद्रा बता रही है कि वह किसी वस्तु से भय खा रहा है। दोनो हाथ कोट की जेब में हैं। वह बीच में ठिठक कर खड़ा हो जाता है। मालिक आहिस्ता से दरवाजा बन्द कर लौटता है।)

मालिक —(जुआरियों से) सज्जनो, बेहतर हो आप अन्दर के कमरे में तशरीफ ले जायें। आप लोगों की चाय वहीं आ जायगी।

(खिलाडियों का खीसें निपोरते हुए तथा विचित्र चेहरे बनाते हुए दूसरे द्वार से अदर प्रस्थान।)

मालिक —(आगतुक की ओर मुड) मेरे नये मेहमान, बैठिये। कहिये क्या हुकुम है ?

आगंतुक —(जिसकी घबराहट अबतक दूर नहीं हुई है) बात यह है कि .(आपानी घड़ी की भाँति सहसा रुक जाना है)

मालिक —कहिये-कहिये, रुकते क्यो हे ?

आगंतुक —नहीं-नही। दरअस्ल में

मालिक —अरे साहब आप घबराते क्यो हे ? .इस तरह काँपिये मत और बतलाइये कि बात क्या है ? क्यो आप इतने परेशान हे ?

आगंतुक —(कुछ साहस बाँध) मे मेरे पीछे पुलिस लगी हुई है। मे अपने को बचाना चाहता हू। मैने कुछ नहीं किया है...

मालिक —हाँ-हाँ, आपने कुछ नहीं किया है। मे कब कहता हूँ कि आपने कुछ किया हैं।

आगंतुक —(कुछ सतोष से) हाँ। आप...

मालिक —(बात काटकर) फिक्र न करें। आप यहाँ मजे से बैठ सकते हैं। यहाँ पुलिस क्या, पुलिस का बाप भी नहीं

फटक सकता—जी हाँ। मजाक न समझिये जनाब, (सिर हिलाता हुआ) यह छेदालाल का होटल है—अजी होटल क्या, पनाहगाह है पनाहगाह। यहाँ सज्जन लोग ही पनाह लेते है। आते है और चले जाते हैं। अपने काम से काम–किसी से न लेना, न देना।

आगंतुक —(जिसे ये बातें व्यर्थ जान पड़ रही है) मगर आप मुझे कहीं छिपा दीजिये न ! पुलिसवाले मेरे पीछे लगे हुए थे, शायद वे यहाँ भी आ जायें।

मालिक —(साहसी बनता हुआ) अजी आने भी दो। मैं कोई डरता हूँ उनसे ! सोलह साल से होटल चला रखा है मैंने—जी हाँ !

आगंतुक —लेकिन मै तो उनसे डरता हूँ। तीन दिन से वे मेरे पीछे है। अबतक तो मैने अपने आप को उनके हाथ नही आने दिया है, पर अब दीखता है मैं उनकी पकड मे आजाऊँगा। वे मेरे हथकडी भर देंगे।

मालिक —(कुछ आश्चर्य से) ऐसा ! तीन दिन से पीछा कर रहे है ! (अचानक) मगर हाँ, वे तुम्हारा पीछा क्यो कर रहे है ? क्या किया है तुमने ?

आगंतुक —(घबराकर) कुछ नहीं ..कुछ भी नहीं। मै . मैने तो ..

मालिक —तुमने तो कुछ नही किया है, यह तो पुलिसवालो को जानना चाहिये। मुझे तो जानना चाहिये कि तुमने किया क्या ! क्योकि मैं पुलिस नही हूँ।

आगंतुक —(चुप है—जैसे सोच रहा है, कहे या न कहे)

मालिक —कहीं चोरी करके आये हो ? (उँगलिया कैंची की तरह चलाकर) किसी की जेब कतर के ?

आगंतुक —(बल देता हुआ) नहीं।

मालिक　—तो फिर ! इससे ज्यादा की हिम्मत तो तुम्हारे अंदर दीखती नहीं। (रुककर) देखो, सही-सही बात बता दो। मुझसे उड़ने की कोशिश करने की जरूरत नहीं।

आगंतुक　—(रुक-रुक कर) मैं ..दरअस्ल मे मैं .(एकदम साहसी बनकर) मैं ख़ून करके आया हूँ।

मालिक　—(जैसे आकाश तिरछा हो गया हो) ख़ून !

आगंतुक　—(ख़ामोश है)

मालिक　—तु तु तुम ख़ून करके आये हो ! . तुमने ख़ून किया है ? मुझे ताज्जुब हो रहा है। तुम्हारे जैसा आदमी भी ख़ून कर सकता है ?

आगंतुक　—(कोई उत्तर नहीं)

मालिक　—(जैसे अपनी कही हुई बातों का स्वयं उत्तर ढूँढ रहा हो) हो सकता है—मैं मानता हूँ। दुनिया में आदमी क्या नहीं कर सकता ! ख़ून भी कर सकता है। तुम भी ख़ून कर सकते हो। लेकिन मेरे ख़याल से तुमने अपने शिकार के सामने पिस्तौल का घोड़ा दबाया होगा !

आगंतुक　—('हाँ'—सूचक सिर हिलाना है)

मालिक　—(सिर हिलाते हुए) हूँ, मैं जानता हूँ। छुरा भोंकने की हिम्मत मुझे तुम्हारे अन्दर नहीं दिखाई पड़ती। और गला—वह तो मर्द ही घोंट सकता है—तुम्हारे जैसा नहीं। (ठहर कर) ख़ून किसी शहर में किया है—इसी में ?

आगंतुक　- (मानो शब्द उसके गले में अटक रहे हों) हां, इसी शहर में।

मालिक　—(उसके डर का आनन्द उठाते हुए) तो तुम मामूली

आसामी नहीं हो । खूनी हो—और हो भी बहुत तिकड़मी । तीन दिन से इसी शहर की गलियों में यहाँ की पुलिस को झाँसा दे रहे हो, और अब शायद अँगूठा ही दिखा जाओ । लेकिन इस तरह कबतक बचोगे ? एक न एक दिन फंदे में आना ही पड़ेगा। फिर ?

(अचानक पीछे से जुआरियों का ठहाका सुनाई पड़ता है)

मालिक —अच्छा एक बात तो बताओ । (आगंतुक के निकट आकर, धीरे से) कितना रुपया हाथ आया है ?

आगंतुक —रुपया ? रुपया तो कुछ भी नहीं मिला है।

मालिक —बहुत घुटे हुए हो तुम । .हां, तुम पनाह लेने यकायक मेरे होटल में कैसे आ गये ?

आगंतुक —(उसे प्रसन्न करने के लिए) जी, मुझे एक आदमी ने बताया था...

मालिक —(भौं मे बल डाल) क्या ?

आगंतुक —यही कि मैं यहां जगह पा सकता हूँ—एक हफ्ता, दो हफ्ता, यानी जबतक पुलिस छानबीन कर ठंडी न पड़ जाय।

मालिक —(क्रोध न रोक सकने के कारण चीखते हुए) नहीं जनाब नहीं । यहाँ आप जैसे खूनी एक हफ्ता तो क्या, एक घंटे के वास्ते भी पनाह नहीं ले सकते। यहां जगह है, हल्के आदमियों के लिए, शरीफों के लिए, जिन्हें पुलिस सिर्फ शक की वजह से ही परेशान करती है। आप ..तु...तुम्हारे जैसे खतरनाक आसामियों के लिए नहीं, खूनियों के लिए नहीं। समझे ?

आगंतुक —(दीन मुद्रा) मुझपर दया करो । मैं तुम्हारे हाथ...

मालिक —(बात काटकर) हाथ क्या हथकड़िया डलवाओगे मेरे हाथों में ?. एक गुनहगार को पुलिस की निगाह से बचाना क़ानून की रू से जुर्म है और उसके वास्ते सज़ा भी मिलती है। तुम तो मेरे और पुलिस के सोलह साल के भाईचारे को बरबाद करने आये हो।

(कमरे में ख़ामोशी हो जाती है। अंदर जुआरियों का ज़ोर से हँसना और शोर करना।)

मालिक —(तीखे स्वर से) सुन रहे हो जनाब। तुम्हे छिपा कर मैं अपने पैरो मे खुद कुल्हाडी नहीं मार सकता। बेहतर है, तुम जैसे आये हो, वैसे ही चले जाओ।

आगन्तुक —(कांपता हुआ) लेकिन जाऊँ कहाँ ? बाहर.

मालिक —(बात काट कर) तुम भाड में जाओ। मुझसे मतलब ? इतना ही काफी समझो जो मैंने तुम्हे इतनी देर जगह दे दी और उससे ज्यादा यह कि पुलिस को बुलवा कर तुम्हे पकडवा न दिया। अब तुम जल्दी चलते बनो यहा से।

आगंतुक —(गिड़गिड़ाते हुए) अच्छा तो थोडी देर और रहने दो—मै तुम्हारे पैर छूता हूँ—फिर मै चला जाऊगा।

मालिक —(कुछ शात होकर) अजी, तुम्हारे ही जैसे लोगो की वजह से मेरा यह शरीफ होटल बदनाम होता है। जब लोग सुनेंगे कि सारे शहर के खूनी, लफगे, शोहदे यहा इकट्ठा होते है और पुलिस यहा आकर उन्हे गिरफ्तार करती है—तो वे क्या सोचेंगे ? वे सोचेंगे—यह सज्जनो का होटल नही है। वे यहा कभी नही आयेंगे। इससे बिजनेस के साथ होटल के नाम पर भी धक्का लगता है. समझे ? क्या समझे ?.. तुम नही समझे ! तुम समझ भी नहीं

सकते। तु ..तु तुम्हारे दिमाग़ में तो पिस्तौल और ख़ून भरा है। तुम...

(सहसा दरवाज़े पर फिर खटखटाहट होती है। आगंतुक अपने भाग्य के समान कांपने लगता है। वह मालिक का हाथ पकड़ लेता है, जो उसका हाथ झटक देता है और दरवाज़ा खोलने आगे बढ़ जाता है। आगतुक भाग कर दूसरे दरवाज से अंदर चला जाता है।

दुर्भाग्य की भांति एक नवयुवक का प्रवेश। चेहरा सुन्दर, किन्तु तनिक विकृत, प्रशस्त ललाट, उस-पर बिखरे हुए बालो की एक लट, दीप्तिमान नेत्र—अत्यन्त गहरे पानी की तरह न जाने उनके भीतर क्या है, भौंहें धनुष की भांति—जैसे ससार को चुनौती दे रही हो। चाल मे गर्व तथा अभिमान।

वह खद्दर की कमीज और पतलून पहने हुए है। दोनो कपड़े साफ नहीं कहे जा सकते। कमीज़ का कॉलर काफी मैला दिखाई दे रहा है। दोनो हाथों के कफ के बटन टूटे हुए हैं।)

नवयुवक —(कुर्सी पर बैठता हुआ) चाय—एक प्याला।

मालिक —बहुत अच्छा। अभी लीजिये।

नवयुवक —देखिये मिस्टर, आप यह दरवाजा बन्द करते जाइये (प्रमुख द्वार की ओर सकेत) और हां, चाय की ऐसी जल्दी नहीं है। मै एकात चाहता हूँ—बिलकुल एकांत। कोई मेरी विचारधारा मे बाधा न दे। (सिग्रेट सुल-गाता है और जेब से दस रुपये का एक नोट निकाल कर देता है।)

मालिक —(नोट लेता हुआ) जी बहुत अच्छा, (अपनी मेज से

घंटी उठा कर नवयुवक के सामने रखते हुए) **चाय की जरूरत पर इसे बजा दीजियेगा।**

(मालिक प्रमुख द्वार बंद करता है और अन्दर जाता है। पहले व्यक्ति का फिर प्रवेश। नवयुवक को देख वह भयभीत नहीं होता। नवयुवक इस व्यक्ति को देखता है—आंखों में आश्चर्य का भाव। पहला व्यक्ति मेज के पास आकर नवयुवक के सामने की कुर्सी पर बैठता है।)

नवयुवक —(उपेक्षा से) **तुम तुम कौन हो जी ? यहाँ क्यों आये हो ?**

पहला व्यक्ति —**मैं भी यहाँ चाय पीने ही आया हूँ।**

नवयुवक —(पूर्ववत भाव से) हूँ। (मुँह दरवाजे की ओर कर लेता है तथा अन्यमनस्कता-पूर्वक धुँआ उड़ाने लगता है)

पहला व्यक्ति —**क्यों, क्या किसी का इन्तजार है ?**

नवयुवक —(खीजकर) **हाँ, पुलिस का।**

पहला व्यक्ति —(कांपते-से स्वर में) **पु पुलिस का ?**

नवयुवक —(उसे भयभीत देख) **हाँ, पुलिस का। लेकिन तुम इतना डर क्यों गये ? सिर्फ पुलिस के नाम से ही ?** (कुछ ठहर कर) **आश्चर्य की बात है। डरना मुझे चाहिये था—डर रहे हो तुम ?**

पहला व्यक्ति —(कुछ साहस कर) **तुम्हें ? तुम्हें क्यों डरना चाहिये था ?**

नवयुवक —**क्यों मेरी करतूत ही ऐसी है।**

पहला व्यक्ति —**क्यों ? . क्या तुमने भी किसी का खून कर दिया है ?**

(अचानक अन्दर से जुआरियों के तेज ठहाके की आवाज आती है। नवयुवक और व्यक्ति दोनों

चौंकते है। नवयुवक पहले व्यक्ति के चेहरे तथा नेत्रो पर कड़ी दृष्टि डालता है, जो उस तीव्र दृष्टि को सहन न कर सकने के कारण मुँह दूसरी ओर कर लेता है।)

नवयुवक —(कुटिल मुस्कान से) मैंने किसी का खून किया है या नहीं, इसे रहने दो। लेकिन मैं दावे के साथ कहता हूँ कि तुमने हाल में ही कोई खून किया है। बोलो सच है न ?

पहला व्यक्ति —(जो मुट्ठी के पैसे की भांति पसीने से तर हो गया है) ले लेकिन तु तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?

नवयुवक —(उसकी दशा देख अट्टहास करता है) बस ! इसी बिरते पर खून किया था ! आश्चर्य है तुमने खून कैसे कर दिया ? तुम्हारे अन्दर खून करने की हिम्मत हो कैसे गई ? खून करने के लिए दिल चाहिए, और म देखता हूँ, तुम्हारे अन्दर दिल या हौसला नाम की चीज ही नहीं है। फिर किसने तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुमसे छुरी चलवा दी, या पिस्तौल का घोडा दबा दिया ? (ठहर कर, घृणापूर्वक) कायर, बुज़-दिल कहीं के। जब तुम अभी तक काँप रहे हो तो उस समय तुम्हारा क्या हाल हुआ होगा ? तुम्हारे जसे के हाथ से मरते हुए तो उस व्यक्ति को भी दु:ख हुआ होगा। तुमने बेकार ही हत्या का नाम बदनाम किया है। अगर तुम्हारे हाथ खुजला रहे थे, तो तुमने कुल्हाडी से लकडी चीरना क्यो न शुरू कर दिया ? बेकार एक व्यक्ति का रक्त इन टूटे हाथों से क्यों बहाया ? बोलो बोलो न क्या साँप सूंघ गया है ? (अधिक उत्तेजना के कारण हाफने लगता है)

पहला व्यक्ति —(अवाक् दृष्टि से नवयुवक को देख रहा है, जसे उसे

समझ न पा रहा हो)

नवयुवक —(कुछ शात होकर) मनुष्य...ईश्वर की सृष्टि का कितनी सुन्दर वस्तु है ! स्वय ईश्वर को अपनी इस रचना पर अभिमान है। ससार-रूपी उपवन में वह एक सुन्दर पुष्प है, और तुमने (उत्तेजित होकर) तुमने व्यर्थ ही एक ऐसे सुन्दर पुष्प को मरोड दिया, एक सुन्दर खिलौने को तोड दिया, जिसे तुम सतत प्रयत्न करने पर भी नहीं जोड सकते, और वह भी निरर्थक ही । क्यो ? आखिर क्यो ? धिक्कार है तुमपर. सौ-सौ लानत है तुम्हारे जैसे पर । (कदाचित अपनी उत्तेजना शात करने के लिए पतलून की जेब से शराब का अद्धा निकाल, मुँह लगा गट-गट पीने लगता है) तुमसे, अरे तुमसे, तो मै ही अच्छा हूँ ।

पहला व्यक्ति— (सविस्मय) मै जानता हूँ । पर तुम इसे क्यो पीते हो ? यह खराब चीज है । शरीफ आदमी इसे नहीं पीते ।

नवयुवक —(व्यग मुस्कान सहित) तुम जानते हो मै कौन हूँ ?

पहला व्यक्ति —(कुछ साहस कर) नहो. (ठहर कर) लेकिन मेरे ख्याल से तुम एक अच्छे आदमी हो—विद्वान और हिम्मत वाले ।

नवयुवक —(जोर से अट्टहास करता है—उसका अट्टहास खोखला है, बिल्कुल खोखला) ।

पहला व्यक्ति —(उसके चेहरे की ओर देखता हुआ) तुम ऐसा क्यो हँसते हो ? तुम्हारी यह हँसी मेरा हृदय कँपा देती है।

नवयुवक —(गम्भीरतापूर्वक) क्योंकि तुमने मुझे बिल्कुल गलत समझा है ।

पहला व्यक्ति —(साश्चर्य) क्या ? तुम्हें गलत समझा है ?

नवयुवक —(सिर हिलाकर) हाँ, मैं न सज्जन हूँ, न विद्वान्। मैं हूँ, बदमाश, आवारा, शोहदा, जालसाज, डाकू, खूनी, फरार और सब-कुछ। मैं शैतान का अवतार हूँ, दुनिया भर की बुराइयों का पुलिंदा—और ऐसे आदमी में इस झूठी हिम्मत का होना आश्चर्य की बात नहीं है।

पहला व्यक्ति —(जिसे विश्वास न हो रहा हो) तुम डाकू ! तुम खूनी !

नवयुवक —हाँ, मैं खूनी, और फिर फरार !

पहला व्यक्ति —(साहसी बनते हुए) जब तुम भी खूनी हो, तुमने भी खून किया है तो फिर मुझे बुरा-भला क्यों कह रहे थे ?

नवयुवक —(रुचि-सी लेते हुए) उसका कारण है। मैंने वीरता-पूर्वक खून किया था। पता है, मैंने किसकी जान ली थी ? मैंने अपने शहर के अत्याचारी कलक्टर का सिर गोली से उड़ा दिया था। वह पापी, बहुत ही क्रूर-हृदय और राक्षस प्रकृति का था। यद्यपि ईश्वर की सृष्टि की एक उपज को नष्ट-भ्रष्ट करने का मुझे कोई अधिकार न था, तथापि उसके जीवन के काले कारनामों ने मुझे उसकी जीवन-लीला समाप्त करने पर विवश कर दिया। (एक क्षण रुककर) उस रात उसके प्राइवेट रूम में मैंने उसे उसके पाप गिनवाये। फिर उसे उसके ईश्वर को याद करने का समय भी दिया—हालाँकि उसके जैसे पापी के याद करने से ईश्वर भी उसे याद न आया होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। एक, दो, तीन के साथ मेरे रिवाल्वर की गोलियों ने उसके भयभीत

मुख को छेद दिया। (हसकर, हाथ झाडता हुआ) इस प्रकार उसका परलोक को पार्सल कर दिया गया, जिसकी कि अभी तक रसीद नही मिली है और न मिलेगी ही।

(अचानक पीछे से जुआरियो की गाली-गलौज की आवाज।)

पहला व्यक्ति —फिर क्या हुआ ?

नवयुवक —फिर मैं एरेस्ट कर लिया गया। फाँसी की सजा होने से पहिले ही भाग निकला और अबतक पुलिस से बचा हुआ हूँ।

पहला व्यक्ति —तुम भागे क्यो ?

नवयुवक —(मुस्कराने की नकल कर) क्योकि इसकी आवश्यकता थी। घर पर कुछ इन्तजाम करना था, (दाँत पीस कर) कुछ गद्दारो से भी मिलना था और कुछ मोटे आसामियो से रुपया भी वसूल करना था।

पहला व्यक्ति —(दृढता से) तुम बहादुर हो।

नवयुवक —(व्यङ्ग्य मुस्कान) बहादुर कम-से-कम मौत से मैं तुम्हारी तरह नही डरता। मैंने खून किया है, इसका मुझे गर्व है। मै जानता हूँ, इसकी सजा मुझे मौत मिलेगी। मैं हँसता हुआ फाँसी के तख्ते पर जा खडा होऊँगा। मेरे सोचे हुए सब काम पूरे हो गये है। अब तो मैं हमेशा परलोक के माइलेज गिनता रहता हूँ। किसी भी रोज मौका देख मैं अपने को पकडवा दूँगा—किसी को मेरी गिरफ्तारी का इनाम तो मिल जाएगा। लुक-छिप कर जीना, हमेशा खतरे में रहना, चूहे-जैसी जिन्दगी से मैं नफरत करता हूँ। (ठहर कर, एक लम्बी साँस ले) और मरने मे कोई गम भी नहीं है मेरे

दोस्त, सिर्फ इतना सोचता हूँ कि लोग यही कहेंगे—'अरे यह तो डाकू था, हत्यारा था, शोहदा था ।'

पहला व्यक्ति —(प्रभावित स्वर में) लेकिन मैं ऐसा नहीं कहूँगा। हालाँकि तुमने मुझे बहुत कोसा है, लेकिन तब भी मैंने बुरा नहीं माना है। मुझे दुःख है तुम उन परिस्थितियों को न जान सके जिन्होंने मुझे मेरी आत्मा के विरुद्ध खून करने पर विवश किया।

नवयुवक —(व्यङ्ग्य मुस्कान) परिस्थितियाँ ? .क्या थीं वे परिस्थितियाँ ?

पहला व्यक्ति —बी० ए० पास करने के बाद दो वर्ष बेकारी और गरीबी से टक्कर लेनी पड़ी। अकेला होता तो फिक्र न थी, लेकिन साथ में पत्नी, युवा बहन और बूढ़ा माँ भी थी। बेकारी में दर-दर भटकता हुआ, काम की भीख माँगता हुआ जब मैं लाला श्यामनारायण के द्वार पर पहुँचा तो उन्होंने मुझे दो सौ रुपये उसी समय दिये और आठ सौ रुपये बाद में देने का वायदा कर मेरे हाथ में पिस्तौल पकड़ा दी। मुझे उनके धनी नि:संतान चाचा माधोनारायण की हत्या करने को कहा गया। एक बार मैं काँप उठा। हत्या ! न, यह मुझसे न होगी, किन्तु भूखे और अर्ध-नग्न परिवार का करुण चित्र फिर मेरी आँखों के सामने आ गया और पाँच दिन का भूखा मैं, अर्धविक्षिप्त अवस्था में हत्या करने को तैयार हो गया। मुझे कुछ याद नहीं, मैंने क्या किया ? केवल याद है कि श्यामनारायण से बकाया रुपया माँगने पर उसने मुझे पुलिस में देने की धमकी दी। तब मैं चैतन्य हुआ और लुकता-छिपता यहाँ आ पहुँचा और तभी आप मिले।

नवयुवक —(सक्रोध) तुमने श्यामनारायण का बताया काम पूरा किया और उसने रुपया देने से इन्कार कर दिया ? (घृणापूर्वक) बुजदिल, भीरु, कहीं के ! तुमने पिस्तौल उस कमीने पर क्यो न खाली कर दी ? तब खुशी-खुशी अपने को पुलिस के हवाले कर देते ?

पहला व्यक्ति —(चिन्ताजनक स्वर में) लेकिन तब मेरे परिवार की क्या दशा होती ? मेरे साथ वे लोग भी तडप-तडप कर मर जाते !

नवयुवक —(घृणापूर्वक) और अब नही मरेंगे वे ? उनका मरना ही अच्छा है। मरना तो सिर्फ एक ही बार है, लेकिन जिन्दा रहना—वह तो हजार बार मरना है !

पहला व्यक्ति —(आश्चर्यपूर्वक) तुम तो हृदयहीन हो, अति कठोर, निर्मम (सहमा) नही-नही तुम विक्षिप्त हो ! तुम

नवयुवक —(बात काट कर) और तुम ? तुम क्या कम विक्षिप्त हो? तुम भला-चङ्गा मस्तिष्क होने भी उसका उपयोग नही कर सकते। तुम नही जानते तुम्हे क्या करना है ? तुम स्वय नहीं जानते तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हे नही मालूम तुम क्या करोगे ? इसी कारण तुम दु खी हो। तुम अपनी शक्ति को नही पहचान सकते न ? लेकिन मै सब जानता हूँ, समझता हूँ। दुनिया का कोई भी सत्य मुझसे छिपा हुआ नहीं है, इसी कारण मै सुखी हूँ।

पहला व्यक्ति —क्या तुम स्वय अपनी कही हुई बातो का मतलब समझ रहे हो। मै तो नही समझ पा रहा हूँ।

नवयुवक —क्यो मिस्टर, तुमने अपनी यह कहानी इस होटल के मैनेजर को तो नहीं सुनाई है ?

पहला व्यक्ति —नहीं, लेकिन मैंने उससे कह दिया है कि मैंने खून किया है।

नवयुवक —(तेजी से) तो उससे अब कह दो कि तुमने खून नहीं किया है। कह देना कि पहले तुमने मजाक किया था, सब गलत बात कही थी। समझे ?

पहला व्यक्ति —(ध्यान न देता हुआ) मैनेजर साहब . मिस्टर मैनेजर (सामने मेज़ पर की घंटी पर हाथ मारता है, जो भद्दी तरह दो-एक बार 'किर्र-किर्र...' करके रह जाती है)

(मालिक का फुर्ती से प्रवेश। वह अत्यन्त आश्चर्य से पहले व्यक्ति को देखता है।)

मालिक —(नवयुवक से) कहिये अब ले आऊँ चाय ?

नवयुवक —(लापरवाही से) रहने दीजिये चाय। यह बतलाइये कि यहाँ पास मे कही फोन होगा—मेरा मतलब टेलिफोन ?

मालिक —टेलिफोन ? हाँ-हा इसी मोड पर। परसराम आढतो की दुकान मे लगा है।

नवयुवक —अच्छा, तो ठीक है। (मनुष्य की ओर मुड) तुम यहीं बैठे रहना। मे अभी आता हूँ।

(नवयुवक का दरवाजा खोलकर बाहर प्रस्थान। मालिक भृकुटी चढाये, पहले व्यक्ति के सामने आकर खडा होता है।)

मालिक —क्यो जी, धरे हो अभी तक ? गये नहीं यहाँ से ?

पहला व्यक्ति —(चेहरे पर मुस्कराहट लाने की चेष्टा कर) अभी से चला जाऊँ, ऐसी जल्दी क्या है ? देखा नही मुझे बैठे रहने को कह गये है यह साहब। (एक क्षण रुक) हाँ देखो, तुम चाय के लिए पूछ रहे थे, मेरे लिए ले आओ।

मालिक —(व्यंगपूर्वक) जो चाय ? .हूँ .मैंने कहा, चाय

कोतवाली में ही पीना। यहाँ चाय-वाय नहीं है। (ठहर कर) समझे नहीं ?

पहला व्यक्ति —(नकल करता हुआ) जो कोतवाली ..? मैंने कहा, मुझे कोतवाली जाने की क्या जरूरत है। मैंने कुछ नहीं किया है। (ठहर कर) समझे नहीं ?

मालिक —(अचकचा कर) तुमने कुछ नहीं किया है ? लेकिन थोडी देर पहले तो तुमने कहा था कि तुम खून करके आये हो !

पहला व्यक्ति —(खड़ा होकर) लेकिन अब कह रहा हूँ कि मैंने कुछ नहीं किया है। खून करने की बात गलत थी। तुम्हारी जांच की जा रही थी।

मालिक —(आप ही-आप) जांच की जा रही थी ? लेकिन किस बात की ? कुछ समझ में नहीं आता। (रुक कर) यह जरूर कोई सी० आई० डी० वाला है।

(मालिक हताश भाव से कुर्सी पर बैठ जाता है। पहला व्यक्ति चुपचाप खड़ा हुआ उसे देखता रहता है। निस्तब्धता छा जाती है। उसे भेदती हुई यकायक अंदर से जुआरियों के ठहाके की आवाज आती है। मालिक चौंकता है। पहला व्यक्ति चौंकता है। दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं।

सहसा बाहर के दरवाजे के खड़कने की आवाज। नवयुवक का अंदर प्रवेश।)

नवयुवक —(हाथ झाड़ता हुआ) सब काम पूरा हो गया है। कुछ बाकी नहीं रहा। (पहले व्यक्ति से) हाँ, अब तुम अपना यह रुपया सँभालो।

पहला व्यक्ति —(जैसे आकाश से गिरा हो) रुपया ?

नवयुवक —(उसे आगे बोलने का अवसर न दे) हाँ रुपया, जो मैंने

अभी तुमसे लिया था, (जेब से नोट निकाल) लो गिन लो। पूरे हैं तीन सौ चालीस या बयालीस।

(नवयुवक पहले व्यक्ति की जेब में नोट ठूँसता है। साथ ही पहले व्यक्ति और मालिक की अज्ञानता मे उनसे छिपा कर पहले व्यक्ति की जेब से रिवाल्वर निकाल कर अपनी जेब मे डाल लेता है।

फिर खामोशी छा जाती है और कुछ देर रहती है।)

पहला व्यक्ति —(सहसा, हताश स्वर मे) मैं इन गुत्थियो को नहीं सुलझा पा रहा हूँ।

नवयुवक —(गभीरतापूर्वक) तुम तो मूर्ख हो। दिमाग के होते हुए भी उसका उपयोग नही कर सकते। लेकिन देखो, अब इस तरह काम न चलेगा। दुनिया में सीधे बन के रहोगे तो मुह की खाओगे। तुम अपने दिमाग से काम लेना सीखो। अपने को पहचानो। जिंदगी के रास्ते पर लड़खड़ाते और ठोकरें खाते हुए चलना

(सहसा कुछ आदमियो के भारी पद-चापो और बूटो की चर्र-मर्र की आवाज सुनाई देती है जो दूर से जल्दी ही नजदीक-नजदीक होती जाती है। दरवाजे पर एक निर्दय खटखटाहट। मालिक कुर्सी पर उछल-सा पडता है।)

मालिक —(आशंकित कापते स्वर मे) कौन ?

बाहरी आवाज़—(रुखाई से) दरवाजा खोलो ?

नवयुवक —(निर्विकार भाव से) दरवाजा खोल दो। पुलिस होगी।

(मालिक दरवाजा खोलने आगे बढता है।)

नवयुवक —(फुर्ती से, जेब से रिवाल्वर निकाल, पहले व्यक्ति की ओर मुड) खबरदार जो पुलिस को एक शब्द भी

कहा। बस, खामोश रहना। कुछ न होगा। इतना घबराओ मत। (रिवाल्वर फिर जेब में डाल लेता है)

(पुलिस इंस्पेक्टर और चार-पाँच सिपाहियों का धड़ाके से प्रवेश। उनका कमरे में इधर-उधर नजरें दौड़ाना। एक का झुककर मेज के नीचे देखना।)

नवयुवक —(भयभीत हो, मनुष्य को संबोधित कर) पुलिस ! धोखा ! जबरदस्त धोखा आखिर तुमने पुलिस बुलवा कर मुझे पकड़वा ही दिया।

पु० इंसपेक्टर —(आगे बढ पहचानने की चेष्टा करता हुआ) कौन, मिस्टर वनफूल ?—हमारे फरार आसामी, जिनकी इतने दिनसे तलाश थी, और जिनकी गिरफ्तारी के लिए दो हजार रुपये का इनाम है।

मालिक —(चौंक कर, स्वतः) दो हजार ! बाप रे !

नवयुवक —(आग्नेय नेत्रों से मनुष्य को घूरता हुआ, मानो उसे भस्म कर देगा) ट्रेटर ! कमीना ! आखिर दो हजार के इनाम के लालच में आ ही गया न ! मुझे बातों में उलझा अपने आप फोन कर पुलिस मँगवा ली ! क्यो अब तो तसल्ली हो गई होगी ?...आखिर दो हजार रुपया जो इनाम मिलेगा—बड़ी बहादुरी से एक फरार इनामी आसामी को गिरफ्तार करवाया है।

पु० इंसपेक्टर —(पहले व्यक्ति से) अच्छा, तो आपने ही फोन कर हमें इत्तला दी है और गिरफ्तारी मे मदद की है ?

पहला व्यक्ति —(खामोश—भौंचक-सा नवयुवक की ओर देखता है)

नवयुवक —(दांत पीस) अब बोलता क्यो नहीं ? क्या मुँह में ताले ठोक दिये है किसी ने ? या इनाम की खुशी में बोल ही नहीं फूटता ?

पु० इंसपेक्टर —(पहले व्यक्ति से) हम आपके शुक्रगुजार है। आपने

गवर्नमेंट के एक बहुत बडे दुश्मन को पकडवाया है। आप जानते है, इन्होने अपने शहर के कलक्टर का खून किया था। यही इनका जुर्म है।

नवयुवक —(फीकी हंसी हंस कर) मिस्टर इंसपेक्टर, मेरे जुर्मों को आप नही जानते। मैंने लाला माधोनारायण का खून भी किया है—परसो रात मे। आश्चर्य न कीजिये। (जेब से रिवाल्वर निकालता हुआ) इसी रिवाल्वर से। डरिये मत, डरिये मत। आप इसका शिकार नही हो सकते। (खोल कर देखता हुआ) यह शायद आपके दिमाग ही की तरह खाली है (इंसपेक्टर को पकडा देता है)

पु० इंसपेक्टर —(डरते-डरते रिवाल्वर पकड कर) शौकत, मिस्टर बनफूल के हथकडी लगाओ।

(एक पुलिस का सिपाही आगे बढकर नवयुवक के हथकड़ी भरता है।)

पु० इंसपेक्टर —(रिवाल्वर उलट-पुलट कर देखता हुआ) ठीक है। म पहले से कयास किए था कि यह किसी पुराने पापी की ही हरकत है। नही तो मजाल है किसी की, कि खून कर इस तरह तीन दिन मेरी नजरो से बचा रह जाय! उडती चिडिया के पर गिनता हूँ मैं!

नवयुवक —(मुस्करा कर) अपनी तारीफ पुलिस स्टेशन के लिए थोडी बकाया रख छोडिये। (रुककर) अब देर करने से फायदा? चलिये। मैं तैयार हूँ।

पु० इंसपेक्टर —चलिए। (पहले व्यक्ति से) आप मेहरबानी कर कल पुलिस स्टेशन पर मिलिए। वहीं बातें होगी। (मालिक की ओर मुड़) क्यो म्याँ छेदालाल, तुम फिर ऐसे

खतरनाक शरीफजादों को पनाह देने लग गए हो। शामत आ गई है, दीखती है तुम्हारी। (सिपाहियों से) चलो जी। (चलने का उद्यत होना)

मालिक —(झुक कर) सलाम सरकार।

नवयुवक —(पहले व्यक्ति से) अच्छा विदा !

(पुलिस और नवयुवक चलते है तथा बाहर निकल जाते हैं। उनके कदमों की भारी आवाज कुछ देर तक सुनाई पड़ती है, जो धीरे-धीरे दूर होती चली जाती है। एक बेतुका-सा सन्नाटा हो जाता है और कमरे मे एक अजीब ही मनहूसियत छाने लगती है।)

मालिक —(परेशानी से) यह सब क्या हो गया—स्टेज पर ड्रामे की तरह ? मेरी समझ में कुछ नहीं आया। (ठहर कर, पहले व्यक्ति से) मेहरबान, मैं आपसे अपने बर्ताव की माफी चाहता हूँ। मैं आपको गलत समझा था। असल में ऐसे लोगों की वजह से होटल बदनाम होता है। उफ ! कितना खतरनाक था यह आदमी। बाप रे ! डबल खूनी, आवारा, फरार। (दृढ़ विश्वास से) पक्का शोहदा था यह !

पहला व्यक्ति —(जिसकी आंखों मे अनायास ही आंसू भर आये है, रुंधे गले से) हाँ, पक्का शोहदा था यह !

(परदा गिरता है)

★

विष्णु प्रभाकर

आपका जन्म १२ जून १९१२ को मुजफ्फरनगर ज़िले के मीरापुर कस्बे में हुआ था। लेकिन बचपन मे ही पंजाब चले जाने के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा वहीं हुई। सन् १९४४ तक एक सरकारी फार्म पर नौकरी करते रहे। उसके बाद दिल्ली आ बसे और स्वतंत्र रूप से लेखन का काम करने लगे।

आप नाटककार होने के अतिरिक्त उपन्यास लेखक, कथाकार तथा रेखा-चित्र-प्रणेता भी हैं। आपका रचनाकाल तो सन् १९३१ से शुरू होता है, पर आपका सबसे पहला नाटक 'हत्या के बाद' सन् १९३९ मे लिखा गया था और 'हंस' मे प्रकाशित हुआ था। "इधर आपकी कला मे अभूतपूर्व निखार आ गया है। यथार्थ की अपेक्षा आप आदर्शोन्मुख है। मानव-प्रवृत्तियो का विश्लेषण करके उनमे आध्यात्मिक पुट देना आपकी अपनी विशेषता है।"—(उपेन्द्रनाथ 'अश्क') "आपके साहित्य की मूलात्मा आपका सहज मानव-गुण है।"—(डा० नगेन्द्र)

आपकी भाषा पर अधिकार है और आपकी शैली मे गति है। रेडियो नाटकों के क्षेत्र मे आपको विशेष सफलता मिली है।

रक्त-चन्दन



पात्र-परिचय

पहला कबायली	
दूसरा कबायली	
तीसरा कबायली	
राधाकृष्ण	: काश्मीर का एक हिन्दू
गुल	: काश्मीर का एक मुसलमान ; राष्ट्रीय कान्फ्रेंस का सैनिक
गौरी	. राधाकृष्ण की लड़की
सोमनाथ सादिक	: किसान के वेश मे दो काश्मीरी

समय...युद्धकालीन काश्मीर १९४७ का अक्तूबर मास

[स्टेज पर हल्का प्रकाश चारो ओर टूटे मकानों का ढेर...ईंट, पत्थर, लकडी के दरवाजे और सामान. सामने एक मकान की दीवार है जिसका दरवाजा बन्द है । खिडकी कई बार आहिस्ता-आहिस्ता खुलती है और बन्द होती है । उसी के साथ प्रकाश घटता-बढता है । प्रकाश के साथ स्वर भी उभरते है और उनके सहारे कुछ शक्लें भी उभरती हैं । कहीं दूर खटका होता है, गोली चलती है और खिड़की पर से मूर्तियां भूत की तरह गायब हो जाती हैं । कुछ क्षण सन्नाटा रहता है । फिर दरवाज़ा खुलता है और तीन मूर्तियां धीरे-धीरे बाहर आती है । तीनो पुरुष है । वे चारो ओर देखते हैं फिर धीरे-धीरे बातें करते है ।]

गुल —अभी कोई डर नहीं है । मैने उन्हें ऐसा उल्लू बनाया है कि वे कम-से-कम दो-तीन घण्टे इधर आने की बात नही सोच सकते । साले कहीं औरतों की तलाश मे घूम रहे होंगे ।

सोमनाथ —तुम ठीक कहते हो । वे कुछ नहीं चाहते, न जर, न जमीन । वे तो औरत चाहते है औरत । उन्होने उन्होने (स्वर भर्रा जाता है ।)

गुल —हिम्मत सोमनाथ ! हिम्मत से काम लो ।
(उसे हाथ से पकडता है ।)

सोमनाथ —मैं समझता हूँ गुल ! सब कुछ समझता हूँ । सब कुछ देखता हूँ लेकिन मैं क्या करूँ ? रह-रह कर मेरी बीवी का चेहरा मेरी आखो में उभर आता है । रह-रह कर जैसे वह मेरे कानो में कह जाती है . 'जिंदगी भर तुमने मेरी रक्षा करने की कसम खाई थी; लेकिन उस दिन तुम्हारे देखते-देखते वे ज़ालिम

लुटेरे मुझे उठा कर ले गए ।' (भावावेग) आह गुल ! (अवकाश) वह देखो वह मेरी बीवी मुझे देख रही है । उसकी वे आखें वे आंखें...

गुल —वे आँखे ! वे आंखे ही तुम्हारी ताकत बनेंगी, सोमनाथ ! वे तुम्हारी बीवी की आँखे नहीं हैं । वे तुम्हारे वतन की आँखें हैं । तुम्हारे खूबसूरत वतन की खूबसूरत आँखें, जो आज तुम्हे खून से खेलने को पुकार रही हैं ।

सादिक —खून से नही जिन्दगी से कहो, गुल । आज मेरे वतन की जिन्दगी मोर्चे पर डटी हुई है ।

सोमनाथ —और उसी जिन्दगी को ये लुटेरे पैरो तले रौंद डालना चाहते हैं ।

सादिक —लेकिन जिन्दगी उन्हे रौद डालेगी, सोमनाथ । वह सांप की तरह है जो ठुकराने वाले को डस कर ही छोडता है ।

सोमनाथ —मुझे यकीन है । मुझे यकीन है । मै डरता नही । तुम लोग अपने मन मे कुछ और न सोच बैठना । मैं पूरी तरह तैयार हूँ ।

गुल —मैं जानता हूँ, सोमनाथ ! तुम्हें डरने की कोई जरूरत नही है । जो वतन की राह मे मिट जाते है आने वाली नस्ले उनके कदमो के निशानो को चूमा करती है ।

सादिक —और तवारीख उनकी शोहरत का डका पीटती है ।

सोमनाथ —मैं यह सबकुछ नही जानता । मैं तो इतना ही जानता हूँ कि यह आजादी की लडाई है । मेरी बीवी उसके लिए मिट गई । मै भी मिट जाना चाहता हूं , लेकिन उन्हे यह बताकर कि किसी की

आज़ादी पर हमला करना अपनी जिन्दगी पर हमला करना है ।

सादिक —और अपनी जिन्दगी पर हमला करने का मतलब है मौत !

गुल —बेशक उन्हे मौत मिलेगी, एक बुजदिल इन्सान की मौत ।

सोमनाथ —बेशक वे बुजदिल है । हमलावर हमेशा बुज़दिल होता है ।

(उन्हें जोश आ जाता है । स्वर तीव्र हो उठते है । तभी दरवाजा फिर खुलता है । एक सिर दिखाई देता है ।)

राधाकृष्ण —शी शी शी तुम लोग क्या कर रहे हो ?

गुल —(एकदम) ओह कोई बात नही । हम जा रहे हैं । जब चारो तरफ आग बरसती हो तो खून में जोश आ ही जाता है । अच्छा सोमनाथ, तुम जा सकते हो । और तुम भी सादिक । याद रखना हिम्मत न टूटने पावे । फौज आने वाली है ।

सोमनाथ —तुम यकीन रखो । यह हमारी आजादी की लडाई है, गुल । इसे फौजें नही लडेगी, हम लड़ेंगे ।

सादिक —बेशक हम लडेंगे । हम तैयार हैं । हमारा खून झरनो की तरह मचल-मचल कर बह उठने को आतुर है ।

सोमनाथ —और हमारी जिन्दगियाँ चिनार के लाल अंगार पत्तो की तरह मादरे वतन को ढक लेना चाहती हैं ।

राधाकृष्ण —फिर वही जोश । फिर वही बातें । तुम लोग जाते क्यो नहीं ?

सादिक —(एकदम) ठीक है राधाकृष्ण । आदाबअर्ज, मैं

चला ।

सोमनाथ —और मैं भी । आदाबअर्ज गुल, आदाबअर्ज राधाकृष्ण ।

(दोनों एकदम मुड़ते हैं)

राधाकृष्ण —आदाबअर्ज ।

गुल —आदाबअर्ज सोमनाथ । आदाबअर्ज सादिक ।

(दोनों आगे बढ़कर बाहर हो जाते हैं । एक क्षण सन्नाटा रहता है । फिर गुल मुड़ता है ।)

गुल —अच्छा काका, मैं भी चला ।

राधाकृष्ण —हाँ, तुम्हें भी जाना चाहिए । चाँद छिप चुका है । और गौरी का ध्यान रखना । उसे श्रीनगर पहुँचाना ही होगा, नहीं तो

गुल —(एकदम) कुछ नहीं, काका । तुम फिक्र मत करो । मैं कुछ-न-कुछ करके लौटूँगा । अच्छा, मैं जा रहा हूँ, होशियार रहना । डरना मत । जल्दी वापस आऊँगा ।

राधाकृष्ण —अच्छा । देखकर जाना और गौरी का ध्यान रखना ।

गुल —जरूर, जरूर ।

(गुल जाता है । शब्द दूर होकर मिटते हैं । राधाकृष्ण कुछ क्षण उस ओर देखता रहता है जिधर गुल गया है । उसी बीच में खिड़की धीरे-धीरे खुलती है । एक कुमारी का सिर धीरे-धीरे सामने आता है । प्रकाश इतना धुंधला है कि स्पष्ट कुछ नहीं दिखाई देता । पर वह एक कुमारी का मुख है, उस कुमारी का जो भयातुर है । वह जैसे ही आगे झुकना चाहती है, वैसे 'खट' ऐसा शब्द होता है । राधाकृष्ण चौंकता है ।)

राधाकृष्ण —कौन ?

गौरी —(भयातुर) कोई नहीं ।

राधाकृष्ण —गौरी !

गौरी —काका ।

राधाकृष्ण —(अन्दर जाता हुआ द्वार बन्द करता है और खिड़की के पास आता है) तुम क्यो आ गई ?

गौरी —वैसे ही देख रही थी, काका। वे लोग गए ।

राधाकृष्ण —हाँ बेटी, वे गए । हम भी अब जाने वाले हैं ।

गौरी —हाँ, काका । चलो, बड़ा डर लगता है ।

(सहसा कही शोर उठता है ! गोली चलती है ! वे दोनो कापते है !)

राधाकृष्ण —यह क्या ? फिर गोली चली ! चलो, चलो, गौरी ।

गौरी —(भयातुर) काका ।

(गौरी एकदम राधाकृष्ण से चिपट जाती है। वह शीघ्रता से उसे थामता है और खिड़की बन्द करता है। शोर पास आता है और स्पष्ट होता है। वही गंदी गालिया, बीभत्स हँसी। कुछ ही क्षण मे कई कबायली वर्दिया पहने और हथियारो से लैस स्टेज पर प्रवेश करते हैं। उनकी चाल बताती है कि वे नशे में चूर है। उन्होने घास के जूते पहिने है। वे शब्द नही करते, पर उनका अपना स्वर उसकी पूर्ति के लिए काफी है। उन्होने बन्दूकें सम्भाली हैं। वे बेतहाशा पागलो की तरह हँसते हैं और गाली देते है।)

पहला कबायली —(अट्टहास)—खों, वहाँ तो कोई नई मिला। साला काफिर हमको फिर धोका दिया। कहां है वह ? हम उसको अबी जान से मार डालेगा ।

(बन्दूक तानता है)

दूसरा कबायली —(और भी जोर से)—ओय, ओय, ओय, उधर क्या हैं ? उधर जला हुआ मकान है।

पहला —(उसी तरह) वही, वही, हम उसी को मारेगा। उसने धोका दिया, औरत नहीं दिया। लो, तुमने इधर औरत देखा है। कम्बख्त ये काफिर लोग कहा से रुपया लाता है ? कहाँ से औरत पैदा करता है ?

दूसरा —मालूम होता है काफिर लोग खुदा के मुशी को रिश्वत देता है।

पहला —क्या ? तुमने क्या बोला। खुदा को रिश्वत ! खुदा को रिश्वत नेई, नई, तुम झूठ बोलता है। खुदा रिश्वत नेई माग सकता। तुम-बी काफिर हैं, साला काफिर। हम तुमको बी मारेगा, अबी मारेगा।

(बन्दूक तानता है। तीसरा कबायली प्रवेश करता है।)

तीसरा —किसको मारेगा? कान है इधर? तुम लोग इधर क्या कर रहा है ? उधर क्यो नही जाता ? (हँसकर) एक मोलवी ने कुरान मे सौ-सौ का नोट छिपाया है।

पहला —सौ-सौ का नोट! क्या नोट औरत होता है? खूबसूरत औरत (अट्टहास)।

दूसरा —खूबसूरत औरत !! खूबसूरत औरत कहाँ है ? हम औरत माँगता है।

तीसरा —तुमको औरत मिलेगा, तीन औरत, मौलवी के घर में तीन परीजादियाँ है (हँसकर) तीन परीजादियाँ। ला, हम बी तीन। वो बी तीन।

दूसरा —(नाचता हुआ)। हम-बी तीन, वो बी तीन, ओ ओ ओ हम-बी तीन, वो बी तीन।

पहला —वो-वो तीन तीन . तीन औरत. तीन खूबसूरत औरत ।

तीसरा —(उसी मस्ती में)—ऐ ऐ नाचता है ! चलता क्यों नहीं ? बहोत खूबसूरत औरत है। बहोत खूबसूरत ! हा, हा, हा, तीन खूबसूरत औरत और तीन सौ-सौ का नोट । यहां न औरत है न दौलत। चलो-चलो। उधर सब कुछ है। (नाटकीय ढंग से) जर है, जन्नत की हूर है, तीन सौ-सौ का नोट, तीन खूबसूरत परीजादियाँ ! (हँसता है)।

पहला —(अट्टहास) . चलो, चलो, उधर ही चलो। (जाता है)।

दूसरा —हां, हां, जन्नत में चलो। वहां हूर है, हूर...(जाता है)।

(तीनों नाचते-गाते जाते है। पहिला फिर लौटता है और बन्दूक उठाकर मकान को लक्ष्य कर के गोली दाग देता है। गहरा स्वर उठता है। फिर डूबने लगता है। कुछ क्षण गूंज उठती रहती है, फिर सन्नाटा छा जाता है। कई क्षण बाद खिड़की फिर खुलने लगती है। राधाकृष्ण का सिर उभरता है। उसकी गति बताती है कि वह चौकन्ना है। उसके साथ गौरी का सिर भी सामने आता है। तनिक-सी आहट पर वह पीछे हट जाता है। वह डरी हुई हिरनी की भांति चौकन्नी है। दोनों धीरे-धीरे बातें करने लगते है।)

गौरी —काका।

राधाकृष्ण —हाँ।

गौरी —गए ?

राधाकृष्ण —हाँ. गए मालूम होते हैं।

गौरी —फिर तो नहीं आयेंगे ?

राधाकृष्ण —क्या पता, बेटी। शहर पर इन्हींका कब्जा है। जब चाहे आ सकते हैं।

गौरी —पर काका, गुल भइया तो कहते थे कि वे शायद आज रात इधर नहीं आयेंगे।

राधाकृष्ण —कहता तो था। उसने कोशिश भी की थी और मुझे तो ऐसा लगता है कि यह जो तीसरा कबायली आया था यह कोई गुल का भेजा हुआ भेदिया था।

गौरी —भेदिया क्या, काका ?

राधाकृष्ण —कोई अपना आदमी कबायली का वेश बनाकर धोखे से उन्हें कहीं और ले गया है।

गौरी —सच ?

राधाकृष्ण —लगता तो ऐसा ही है।

गौरी —पर काका, ये लोग ऐसे क्यों हैं ! क्यों आग लगाते हैं ? क्यों लूटते हैं ? क्यों मारते हैं ?

राधाकृष्ण —ये राक्षस हैं, बेटी। इनका स्वभाव ही ऐसा है।

गौरी —ये राक्षस हैं ? नहीं काका। ये तो आदमी हैं। इन्हें देखकर डर तो लगता है, पर हैं तो आदमी ही।

राधाकृष्ण —डर लगता है, तभी उन्हें राक्षस कहते हैं, बेटी।

गौरी —डर तो बहुत लगता है, काका। (अवकाश) काका! मुझे माँ के पास कब ले चलोगे ?

राधाकृष्ण —(अपने आप से)—काश कि बेटी तू भी अपनी माँ के साथ श्रीनगर चली जाती।

गौरी —क्यों काका ! बोलते क्यों नहीं ? कब चलोगे ?

राधाकृष्ण —कब चलोगे ? बस अब चलेंगे ही। गुल इसी बात का इन्तजाम करने गया है। आज हमें यहाँ से चले जाना है। कुछ भी हो।

गौरी —सच काका ! तब तो बडा अच्छा रहेगा। रास्ते में कुछ गडबड तो नहीं है ?

राधाकृष्ण —नहीं बेटी। आगे सब ठीक है। श्रीनगर से हमारी फौजें चल पडी है।

गौरी —तो श्रीनगर चलेंगे। ओह, यहाँ तो बडा डर लगता है। वहाँ मा होगी, दादी होगी, भइया होगें। कैसा अच्छा ? क्यो काका, गुल भइया कब आवेंगे ?

राधाकृष्ण —(खोया-खोया-सा) बस आने ही वाला होगा।

गौरी —काका, गुल भइया बहुत अच्छे है।

राधाकृष्ण —(उसी प्रकार) अच्छा; वह फरिश्ता है, फरिश्ता। वह हमारा सहारा है। हमारे जैसे हजारो बदनसीबो का सहारा है। भगवान ! तुम उसकी रक्षा करना। कही उसे कुछ न हो कही उसे कुछ न हो। . नहीं तो नही तो .

(राधाकृष्ण भावावेष में खोने लगते है। गौरी उन्हे देखती है।)

गौरी —(एकदम) काका।

राधाकृष्ण —(चौंक कर) हाँ बेटी।

गौरी —काका तुम चुप क्यो हो जाते हो ? मुझे डर लगता है। देखो चॉद भी छिप गया। बाहर कैसा अँधेरा है ? मुझे यहा से ले चलो।

राधाकृष्ण —बस, अब चलेंगे। आओ अन्दर बैठें। यहा कोई आ सकता है। आओ .

(राधाकृष्ण गौरी को ऐसे पकडते हैं जैसे अपने में समेट लेंगे और अन्दर की ओर मुड़ना चाहते हैं।)

गौरी —क्यो काका, गुल भइया भी चलेंगे ?

राधाकृष्ण —वह कैसे जा सकता है ? यह उसका मकान है।

वह यहां नहीं रहा तो

(कहते-कहते वे खिड़की बन्द करना चाहते हैं कि बाहिर खटका होता है, वे चौंकते हैं)

राधाकृष्ण —कौन ?

(गुल स्टेज पर प्रवेश करता है। उसके पास एक छोटी-सी गठरी है।)

गुल —मैं था, काका।

राधाकृष्ण —(हर्ष से) तुम आ गये गुल।

(खिड़की से हटकर किवाड़ खोलता है, गुल अन्दर आता है, दोनों खिड़की पर आते हैं। गौरी गुल के पास आती है। वह बहुत प्रसन्न है।)

गौरी —तुम आ गये, भइया ! कब चलोगे ?

(गुल कुछ अनमना-सा है। मुस्कराना चाह कर भी मुख पर प्रसन्नता नहीं आ पाती।)

गुल —बस, अभी कुछ देर में चलेंगे !

राधाकृष्ण —गौरी ! देखो तो बेटी समावार में पानी है ?

गौरी —हां, है। चाय पियोगे ?

राधाकृष्ण —हां, गुल को चाय की जरूरत है।

गौरी —अभी बनाती हूं।

(गौरी जाती है। राधाकृष्ण गुल को देखता है।)

राधाकृष्ण —क्या खबर है ?

गुल —खबर खराब है।

राधाकृष्ण —(चिंता) खराब ?

गुल —हां काका। खबर बहुत खराब है। उन लोगों ने गांव के गांव तबाह कर दिये हैं। वे बेगुनाह इंसानों की जिंदगी पर मौत बरसा रहे हैं। उनके नापाक इरादे औरतों की अस्मत को बरबाद कर रहे हैं।

वे जमीन नहीं चाहते ।

राधाकृष्ण —वे जमीन नहीं चाहते, ज़र चाहते हैं ? और...जाने दो। वह सब तो मैं भी जानता हूं । पर सवाल यह है कि क्या किसी तरह गौरी को यहां से निकाला जा सकता है ? उसे डर लगता है।

गुल —उसे डर लगता है ? उसका डरना ठीक है । हैवान से आदमी नहीं डरता; लेकिन जब इन्सान हैवान बन जाता है तो उससे बस डरा ही जाता है ।

राधाकृष्ण —ठीक है गुल । पर गौरी के जाने के बारे में कुछ हुआ क्या ?

गुल —हां, काका ।

राधाकृष्ण —(एकदम प्रसन्न) सच ?

गुल —सच काका। दुनिया की कोई भी ताकत उसे यहां से जाने से नहीं रोक सकती ।

राधाकृष्ण —(कुछ चौंकता तो है पर प्रसन्न होकर कहता है)... गुल, तुम बहोत अच्छे हो। तुम्हारी वजह से गौरी अबतक बची रही है, नहीं तो ..

गुल —(हसकर) ठीक है, काका । उस बात की चर्चा क्यो करते हो पर (एकदम फिर खोया-सा हो जाता है) कैसी दुनिया है यह ? कैसा निजाम है उसका ? (हसता है)

राधाकृष्ण —गुल !

गुल —काका !

राधाकृष्ण —हालत कुछ बहुत खराब है ? क्या हमारी फौजें नहीं आई ?

गुल —आने वाली हैं ।

राधाकृष्ण —तो क्या वे लोग कुछ कर रहे हैं ?

गुल　　—कुछ नहीं, काका। उनका कोई डर नहीं है। वे इस वक्त भी आ जांय, तो गौरी उन्हें नहीं मिल सकती।

राधाकृष्ण　　—(चकित-सा) क्या मतलब ? तुम करना क्या चाहते हो ?

गुल　　—(मुंह पर उँगली रखता है) आहिस्ता। आहिस्ता बोलो, काका। दीवारें टूट चुकी हैं। हवा से अब कोई परवा नहीं है।

राधाकृष्ण　　—(धीरे से) ठीक है। मुझे बताओ, मैं क्या करूं ?

गुल　　—(पोटली देता है) लो, यह लो। इसमें सिलवार, कुल्ला, कुरता और जूते हैं।

(राधाकृष्ण एकदम पोटली खोलता है और एक-एक चीज को देखता है।)

राधाकृष्ण　　—(प्रसन्न होकर) ओ हो ! ये सब तो उन जैसे हैं। खूब ! इन्हें पहन कर मैं बिल्कुल कबायली लगूंगा। बिल्कुल।

गुल　　—और उन जैसे बनकर उनकी हद से बाहिर हो जाओगे।

राधाकृष्ण　　—हां, मैं तो हो जाऊंगा, लेकिन गौरी कैसे करेगी ?

गुल　　—गौरी के लिए भी मैं सब सामान ले आया हूँ।

राधाकृष्ण　　—क्या लाए हो ? देखूं, कहा है ?

(गुल जेब से एक शीशी निकाल कर आगे बढाता है)

गुल　　—यह है।

राधाकृष्ण　　—(चौंककर) यह क्या यह तो शीशी है। (हंसकर) इसमें क्या जादू की दवा है ?

गुल　　—(गम्भीर स्वर में) हां काका, इसमें जादू की दवा

है । इसे पीकर आदमी ऐसा गायब होता है कि लाख कोशिश करने पर भी उसे कोई नहीं पा सकता ।

राधाकृष्ण —(ठगा-सा) सच...?

गुल —(बरबस हसकर) लो देखो ! तुम तो पढ़ना जानते हो ।

राधाकृष्ण —(शीशी को रोशनी के पास ले जाता है, पढकर कांप उठता है) क्या, क्या . यह तो...यह तो ज़हर है । क्या तुम गौरी को जहर देना चाहते हो ?

गुल —(ढीला स्वर) काका !

राधाकृष्ण —(भयातुर) गुल ! गौरी को जहर देना होगा—गौरी को ज़हर ..

गुल —काका ! और कोई रास्ता नही, कोई रास्ता नहीं । होता तो काका; मै. काश कि मै अपनी जान देकर भी गौरी को बचा पाता !

राधाकृष्ण —(रुँधा हुआ स्वर) गौरी को जहर गौरी को जहर, नही. .नही ..

गुल— (उसी तरह) .काका, मै उसे नहीं बचा सकता; लेकिन उसे बेइज्जत होते भी नहीं देख सकता । इज्जत जिन्दगी से बहुत कीमती होती है, काका ! बहुत कीमती ।

राधाकृष्ण —(रोता है) लेकिन गुल...गुल..

गुल —रोते हो, काका ! तुम्हारा रोना ठीक है, औलाद की मोहब्बत रुलाती है, लेकिन काका ! अब तुम रोते हो, पर जब तुम अपनी औलाद की इज्जत अपनी आँखो के सामने इन खूंखार वहशी डाकुओं के हाथों लुटते देखोगे तब क्या करोगे ?

(गुल को जोश आता है। उसका धीमा पर आवेश-पूर्ण स्वर गहरी गूंज पैदा करता है। राधाकृष्ण फूट-फूट कर रोता रहता है। बोलता नहीं। सहसा गौरी के आने का स्वर उठता है। दोनों चौंकते हैं।)

गुल —काका ! गौरी आ रही है। उसे अपने आँसू मत दिखाओ।

राधाकृष्ण —गुल गुल ! (राधाकृष्ण एकदम सीधा होकर आंसू पोंछता है। गौरी पास आती है।)

गुल —गौरी ! तुम बहुत अच्छी हो। मुझे इस वक्त चाय की बड़ी जरूरत थी। बहुत थक रहा हूं।

गौरी —तो लो, चाय पियो। बहुत है।

गुल —काका के लिए भी है ?

गौरी —हां।

गुल —और गौरी के लिए भी !

गौरी —(हंसकर) मैं तो पी चुकी।

गुल – तो क्या हुआ ! अब हमारे साथ पियो। मैं तुम्हारे लिए बाकरखानी लाया हूँ।

गौरी —(बालोचित सरलता से) कहाँ है ?
(जेब में से निकालता है)

गुल —लो यह एक ही मिली है, तुम खालो।

गौरी —और तुम ?

गुल —मैं तो खा चुका।

गौरी —काका नहीं खायेंगे ? (राधाकृष्ण से) काका आधी तुम लो।

राधाकृष्ण —(बहुत सम्हल कर बोलता है पर स्वर भर्राया हुआ है।) तुम्हीं खाओ, बेटी। मेरे पेट में दर्द है।

गौरी —नहीं, काका तुम भी लो । पेट का दर्द ठीक हो जायगा । हमें चलना भी तो है । कैसी अंधेरी रात है ? चाद भी तो छिप गया ।

गुल —अच्छा हुआ जो छिप गया । वह हमारी मुसीबत को जानता है । अंधेरे मे हमें कोई नहीं देखेगा ।

गौरी —पर मुझे तो डर लगता है ।

गुल —डर की दवा तुम्हारे काका के पास है ।

गौरी —सच ? डर की भी कोई दवा होती है ।

गुल —हा, होती है । पर तुम पहले चाय तो दो ।

गौरी —ओ हो, वह तो मैं भूल ही गई थी ।

(प्याले मे चाय उँडेलती है । प्याले फूटे हैं)

गौरी —प्याले भी तो फोड गए ।

गुल —उन्हे फोडना ही आता है । वे जोडना नहीं जानते ।

गौरी —(प्याला देती हुई) ऐसा कबतक रहेगा भइया ?

गुल —(घूट भरता हुआ) बस, अब सबेरा हुआ ही चाहता है । सुना है हमारी फौजें चल पडी है । इधर हम लोग भी तैयार है ।

गौरी —(राधाकृष्ण को प्याला देती हुई) लो काका । (गुल की ओर मुडकर) तुम भी लडोगे ।

गुल —अब तो सबको लडना होगा ।

गौरी —पर मुझे तो डर लगता है ।

गुल —(हंसकर) तुम अभी छोटी हो । पर तुम्हारे डर की दवा मै ले आया हू ।

गौरी —(हंसकर) ओ हो ! वह तो मै भूल ही गई थी । काका, दो न, कौनसी दवा है !

राधाकृष्ण —(काप उठता है । प्याला हाथ से छूट जाता है) क्या

गौरी —(एकदम) काका, तुम्हारी चाय बिखर गई।

राधाकृष्ण —(रुंधा स्वर) बिखर जाने दो। मेरे पेट में दर्द कुछ तेज हो रहा है, गौरी। ओह ..ओह...

(राधाकृष्ण का मुंह बुरी तरह विकृत हो जाता है। आंखों में आंसू भर आते हैं। गौरी पास आकर हाथ पकड़ती है।)

गुल —(गंभीर अर्थ-भरा स्वर) काका ! पेट के दर्द को ठीक कर लो। हमें अभी चलना है, देर हो गई तो वे लोग आ सकते हैं। इस बार उन्हें धोखा नहीं दिया जा सकता।

राधाकृष्ण —(संभलता हुआ) ठीक है। मैं ठीक हूं, गुल। मैं चलूंगा। अभी चलूंगा।

गुल —तो गौरी को उसकी दवा दे दो।

राधाकृष्ण —गुल...अभी देता हूं। चाय पी लूं। बेटी, चाय और है ?

गौरी —है काका ?

राधाकृष्ण —तो दो न। बाकरखानी भी दो।

गौरी —(चाय उंडेलती है, बाकरखानी देती है।) लो काका। और मुझे दवा दो।

राधाकृष्ण —अभी देता हूं। (बाकरखानी का टुकड़ा गौरी के मुंह में देता है।) लो खाओ।

गौरी —(भरा मुंह)—काका, मैं तो खा ही रही थी।

गुल —पर काका के हाथ से कहां खाया था। (हंसता है।)

गौरी —(हंसती है) अच्छा काका। दवा तो दो। फिर चलें।

गुल —हां, दो काका। गौरी को चलने का बड़ा चाव है। ठीक भी है, बेचारी अपनी मां से मिलेगी।

गौरी —और दादी से, भइया से।

गुल —हाँ सबसे मिलना। काका अब दवा दे दो, जल्दी करो।

राधाकृष्ण —(शीघ्रता से) लो गुल तुम दे दो। मैं तनिक अन्दर देखलूं।

(शीशी देता है। हाथ कांपता है।)

गुल —(शीशी लेकर)—हां, काका तुम जरूरी सामान बटोर लो। लो गौरी; यह दवा आंख मीच कर पी लो।

(राधाकृष्ण लड़खड़ाता है पर रुकता नहीं। गौरी दवा की शीशी हाथ मे लेती है।)

गौरी —आंख मीचने की क्या जरूरत है। क्या कड़वी है।

गुल —नहीं।

गौरी —तो लो मैं ऐसे ही पी जाती हू। (शीशी खोलकर मुंह से लगाती है।) देखो।

(दवा मुंह में जाती है। चेहरा विकृत होता है। देखते-देखते गौरी छटपटाने लगती है और पीछे को गिर पड़ती है। मुंह से अस्फुट स्वर निकलता है) का...

(गुल एकदम पुकारता है)

गुल —गौरी...

(राधाकृष्ण दौड़े आते हैं)

राधाकृष्ण —(रोते हुए) गौरी गौरी .इ-हो हो हो।

(फूट-फूट कर रोता है)

गुल —(रुंधा स्वर) काका ..काका...तसल्ली ..

राधाकृष्ण —(चीत्कार करता हुआ) गौरी . गौरी...मेरी बेटी। गौरी, तू तो अभी बोल रही थी बेटी। तू इतनी देर

में कहां चली गई। गुल,

गुल —(गम्भीर स्वर)—वह भगवान के पास चली गई है काका। वहा उसकी खूबसूरती और अस्मत का कोई मोल-तोल करने वाला नहीं होगा। गौरी खुश-किस्मत थी, काका बहुत खुश-किस्मत..

राधाकृष्ण —(रोता हुआ) गुल. .गुल। तुम कुछ नहीं जानते। मै उसकी मां को क्या जवाब दूगा! जब वह पूछेगी, मेरी बेटी को कहाँ छोड आये, तो क्या कहूगा! बताओ क्या कहूगा?

गुल —अब कहने की क्या बात है? कहना तो तब मुश्किल होता जब अस्मत के वे लुटेरे उसे उठा कर ले जाते। तुम्हारी बेटी की जान चली गई, काका लेकिन जान से प्यारी अस्मत नहीं गई।

राधाकृष्ण —(कुछ सम्हलकर) गुल, गुल. (सुबककर) मै बाप हू, गौरी का बाप।

गुल —जानता हूँ काका। तुम बहादुर बेटी के बहादुर बाप हो। तुमने अपनी बेटी की अस्मत ही नही बचाई, तुमने दुश्मन की आँखो मे धूल झोकी है, लुटेरो के मन्सूबो पर पानी फेरा है, वतन के दुश्मनो से वतन की आबरू को बचाया है।

राधाकृष्ण —(चकित-सा उपर को मुह उठाता है) गुल गुल तुम क्या कह रहे हो?

गुल —ठीक कह रहा हूँ काका! उठो और वतन पर जान कुर्बान करने वाली बेटी को आग के सुपुर्द करो।

(कहीं गोली चलती है, शोर उठता है)

राधाकृष्ण —(काप कर) वे फिर आगए गुल! वे फिर आगए।

गुल —कोई डर नहीं, अब कोई डर नहीं, काका। हम तैयार

है, लो उठो। गौरी को अन्दर ले चलो।

(क्षणिक सन्नाटा, फिर शोर, राधाकृष्ण का कांपना)

गुल —उठो काका ! वे आगए तो...

राधाकृष्ण —(उठता हुआ) नही, नहीं, गुल। जो इसे जीते जी नहीं छू सके वे मरने पर भी नहीं छू सकेंगे। (कण्ठ रुक जाता है।) कभी नहीं छू सकेंगे।

गुल —तुम, बहादुर हो काका। बहादुर बेटी के बहादुर बाप।

(दोनों गौरी को उठा ले जाते है। शोर पास आता जाता है। खिडकी-द्वार दोनो बन्द होते हैं। गोलियों का शोर उठता है। फिर गोली चलने लगती है। चलती रहती है। परदा गिर जाता है। गिरते-गिरते कवायलियों के पैर स्टेज पर दिखाई देने लगते है।)



श्री जगदीशचन्द्र माथुर

आपका जन्म १६ जुलाई १६१७ को हुआ। आपका रचना काल सन् १६२६ से प्रारम्भ होता है। आपके प्रथम एकांकी 'मेरी बांसुरी' का सन् १६३६ मे म्योर होस्टल में अभिनय एवं 'सरस्वती' में प्रकाशन हुआ। आपने सन् १६३७ से १६४३ के बीच कई एकांकी नाटक लिखे और उनका अभिनय कराया। इनमे से पांच का संग्रह 'भोर का तारा' सन् १६४६ मे प्रकाशित हुआ जो आपको सफल एकांकी नाटककारो की प्रथम कोटि मे स्थान दिलाने के लिये पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त आपका पूरा नाटक 'कोणार्क' प्रकाशित हो चुका है। 'कुंवरसिंह' और 'पाच नटखट नाटक' भी लगभग तैयार हैं। आजकल आप लोक-रंगमच के लिए कुछ सामग्री तैयार करने में संलग्न हैं और कुछ धुमंतू नाट्य मडलियो की स्थापना भी कर चुके हैं।

आपने सन १६४४ मे बिहार के सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक पर्व वैशाली महोत्सव का बीजारोपण किया। उसी सबध मे सन १६४७ में वैशाली अभिनन्दन-ग्रंथ नामक विद्वत्तापूर्ण संग्रह ग्रंथ का सपादन भी किया।

सरकारी जीवन मे आप इण्डियन सिविल सर्विस के अधिकारी हैं और १६४६ ई० मे बिहार राज्य के शिक्षा सचिव के पद पर काम कर रहे है।

आपकी कला मे कवित्व और यथार्थ दोनो का समावेश है और इसलिए उसका आदर्श पकड से बाहर नहीं है। आप मानव-आत्मा के शिल्पी हैं। आपकी शैली सैरस, भाषा मजी हुई, मधुर और साधारण बोल-चाल की है।

*

रीढ़ की हड्डी



पात्र-परिचय

उमा	: लड़की
रामस्वरूप	: लड़की का पिता
प्रेमा	. लड़की की माँ
शंकर	: लड़का
गोपालप्रसाद	: लड़के का बाप
रतन	: नौकर

(मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा । अन्दर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नज़र आ रही है वह अधेड़ उम्र के मालूम होते है, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे मे आते है । तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है ।)

बाबू —अबे धीरे-धीरे चल । ...अब तख्त को उधर मोड़ दे...उधर । . .बस, बस ।

नौकर —बिछा दूं साहब ?

बाबू —(जरा तेज़ आवाज़ मे) और क्या करेगा ? परमात्मा के यहाँ अक्ल बट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या ? बिछा दू सा'ब ! और यह पसीना किस लिए बहाया है ?

नौकर —(तख्त बिछाता है) ही-ही-ही ।

बाबू —हँसता क्यो है ? ...अबे, हमने भी जवानी में कसरते की है । कलसो से नहाता था लोटो की तरह । यह तख्त क्या चीज है ?...उसे सीधा कर यो . हा बस । ...और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए । ...चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही ।

(नौकर जाता है । बाबू साहब इस बीच में मेज़पोश ठीक करते हैं । एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ करते हैं । कुर्सियों पर भी दो चार हाथ लगाते हैं । सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती है । गंदुमी ंग, छोटा कद । चेहरे और आवाज़ से जाहिर होता

हैं कि किसी काम में बहुत व्यस्त है । उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ । बाबू साहब—रामस्वरूप—दोनों की तरफ देखने लगते हैं)

प्रेमा —मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या ज़रूरत पड़ गई ! एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में . .

रामस्वरूप —धोती ?

प्रेमा —हाँ, अभी तो बदल कर आये हो, और फिर न जाने किस लिए

रामस्वरूप —लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने ?

प्रेमा —यही तो कह रहा था रतन ।

रामस्वरूप —क्यों बे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है क्या ? मैंने कहा था—धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे माँग ला अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ । उल्लू कहीं का ।

प्रेमा —अच्छा, जा, पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रक्खे हैं न ? उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला ।

रतन —और दरी ?

प्रेमा —दरी यहीं तो रक्खी है, कोने में । वह पड़ी तो है ।

रामस्वरूप —(दरी उठाते हुए) और बीबीजी के कमरे में से हार-मोनियम उठा ला, और सितार भी । जल्दी जा ।

(रतन जाता है । पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं)

प्रेमा —लेकिन वह तुम्हारी लाडली बेटी तो मुँह फुलाये पड़ी है ।

रामस्वरूप —मुँह फुलाये । और तुम उसकी माँ किस मर्ज की दवा हो ? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आये

है । अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाय तो मुझे दोष मत देना ।

प्रेमा —तो मैं ही क्या करूँ ? सारे जतन करके तो हार गई । तुम्हीने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढ़ा रक्खा है । मेरी समझ में तो यह पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं । अपना जमाना अच्छा था ! 'आ ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ़ ली । सच पूछो तो स्त्री-सुबोधिनी में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई होगी । और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं—

रामस्वरूप —ग्रामोफोन बाजा होता है न !

प्रेमा —क्यों

रामस्वरूप दो तरह का होता है । एक तो आदमी का बनाया हुआ । उसे एक बार चलाकर जब चाहे रोक लो । और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ । उसका रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं ।

प्रेमा —हटो भी । तुम्हें ठठोली ही सूझती रहती है । यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते । अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में ।

रामस्वरूप —तो हुआ क्या ?

प्रेमा —तुम्हीने तो कहा था कि जरा ठीक-ठीक करके नीचे लाना । आजकल तो लड़की कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है ? इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रक्खा था । पर उसे तो इन चीजों से न जाने किस जन्म की नफरत है । मेरा कहना था कि आँचल में मुंह लपेटकर लेट

गई । भई, मैं तो बाज आई तुम्हारी इस लड़की से ।

रामस्वरूप —न जाने कैसा इसका दिमाग है । वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है ।

प्रेमा —अरे मैंने तो पहले ही कहा था । इंट्रेंस ही पास करा देते—लड़की अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती ! पर तुम तो—

रामस्वरूप —(बात काट कर) चुप, चुप !...(दरवाजे में झाँकते हुए) तुम्हें कतई अपनी जबान पर काबू नहीं है । कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने जिक्र और ढँग से होगा । मगर तुम तो अभी से सब-कुछ उगले देती हो । उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी ?

प्रेमा —अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी । जैसी तुम्हारी मर्ज़ी हो करना । बस मुझे तो मेरा काम बता दो ।

रामस्वरूप —तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो । न सही पौडर । वैसे कौन बुरी है । पान लेकर भेज देना उसे । और नाश्ता तो तैयार है न ? (रतन का आना) आ गया रतन ? इधर ला, इधर । बाजा नीचे रख दे । चद्दर खोल । पकड़ा तो जरा इधर से ।

(चद्दर बिछाते हैं)

प्रेमा —नाश्ता तो तैयार है । मिठाई तो वे लोग ज्यादा खायँगे नहीं । कुछ नमकीन चीजें बना दी हैं । फल रक्खे हैं ही । चाय तैयार है, और टोस्ट भी । मगर हाँ, मक्खन, ? मक्खन तो आया ही नहीं ।

रामस्वरूप —क्या कहा ? मक्खन नहीं आया ? तुम्हें भी किस वक्त याद आई है । जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात

सूझती ही नहीं। अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे। दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरो के मारे

प्रेमा —यहाँ का काम कौन ज्यादा है? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में 'ट्रे' में रक्खा हुआ है, सो तुम्हे पकडा दूँगी। एकाध चीज खुद ले आना। इतनी देर मे रतन मक्खन ले ही आयगा।—दो आदमी ही तो है?

रामस्वरूप —हाँ, एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना कि जरा करीने से आये। ये लोग ज़रा ऐसे ही हैं। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालो पर। खुद पढ़े-लिखे है, वकील हैं, सभा-सोसाइटियो में जाते हैं, मगर लडकी चाहते है ऐसी कि ज्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

प्रेमा —और लडका?

रामस्वरूप —बताया तो था तुम्हे। बाप सेर है तो लडका सवा सेर। बी० एस० सी० के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है मेडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ, मजबूरी है। मतलब अपना है वरना इन लड़को और इनके बापो को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी..

रतन —(जो अब तक दरवाज़े के पास चुपचाप खडा हुआ था, जल्दी जल्दी) बाबूजी, बाबूजी।

रामस्वरूप —क्या है?

रतन —कोई आते हैं।

रामस्वरूप —(दरवाजे से बाहर झाककर जल्दी मुह अन्दर करते हुए) अरे, ए प्रेमा, वे आ भी गये। (नौकर पर नजर पड़ते ही) अरे तू यहीं खडा है, बेवकूफ। गया नहीं मक्खन लाने ? सब चौपट कर दिया।. अबे, उधर से नहीं, अदर के दरवाजे से जा (नौकर अन्दर आता है) और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोडा सा गा देगी।

(प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ आती है। उसकी धोती जमीन पर रक्खे हुए बाजे से अटक जाती है।)

प्रेमा —उँह। यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कमबख्त।

रामस्वरूप —तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ।..जल्दी।

(प्रेमा जाती है। बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाडो पर दस्तक।)

रामस्वरूप —हें-हें-हें। आइए, आइए।..हें-हें-हें।

(बाबू गोपालप्रसाद और उनके लड़के शकर का आना। आँखो से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज से मालूम होता है कि काफी अनुभवी और फितरती महाशय है। उनका लड़का कुछ खीस निपोरनेवाले नौजवानो मे से है। आवाज़ पतली है और खिसियाहट-भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।)

रामस्वरूप —(अपने दोनो हाथ मलते हुए) हें-हें, इधर तशरीफ़ लाइए इधर..।

(बाबू गोपालप्रसाद बैठते है, मगर बेत गिर पड़ता है।)

रामस्वरूप —यह बेत! लाइए मुझे दीजिए। (कोने मे रख

देते हैं। सब बैठते हैं।) हँ हँ . मकान ढूंढ़ने में कुछ तकलीफ़ तो नहीं हुई ?

गोपालप्रसाद —(खखारकर) नहीं। ताँगेवाला जानता था।...और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नही ?

रामस्वरूप —हँ हँ हँ। यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ तो दी—

गोपालप्रसाद —अरे नहीं साहब! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यो कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।

रामस्वरूप —हँ-हँ-हँ? यह लीजिए, आप तो मुझे काँटो में घसीटने लगे। हम तो आपके—हँ हँ—सेवक ही हैं। हँ हँ! (थोड़ी दर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शंकर बाबू कितने दिनों की और छुट्टियाँ है ?

शंकर —जी, कालिज की तो छुट्टियाँ नहीं है। 'वीक एण्ड' में चला आया था।

रामस्वरूप —तो आपके कोर्स खत्म होने में तो अब साल भर रहा होगा ?

शंकर —जी, यही कोई साल दो साल।

रामस्वरूप —साल दो साल ?

शंकर —हँ हँ हँ! . जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ .

गोपालप्रसाद —बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताएँ, इन लोगो को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती है। एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख।

रामस्वरूप —कचौड़ियाँ भी तो उस ज़माने में पैसे की दो आती थीं।

गोपालप्रसाद —जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी बालाई आती थी। और अकेले दो आने की हज़म करने की ताकत थी, अकेले! और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते हैं स्कूल में। तब न कोई वौली बाल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। बस कभी हाकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमज़ोर है।

(शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते हैं।)

रामस्वरूप —जी हाँ, जी हाँ! उस ज़माने की बात ही दूसरी थी। हँ हँ!

गोपालप्रसाद —(जोशीली आवाज़ में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घंटे! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस ज़माने का मैट्रिक भी वह अंग्रेज़ी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबिला नहीं कर सकते।

रामस्वरूप —जी हाँ, जी हाँ! यह तो है ही।

गोपालप्रसाद —माफ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की जब याद आती है, अपने को ज़ब्त करना मुश्किल हो जाता है!

रामस्वरूप —हँ-हँ-हँ!...जी हाँ वह तो रंगीन ज़माना था, रंगीन ज़माना! हँ-हँ-हँ

(शंकर भी ही-ही करता है।)

गोपालप्रसाद —(एक साथ अपनी आवाज़ और तरीका बदलते हुए) अच्छा, तो साहब फिर 'बिज़नेस' की बातचीत हो जाय।

रामस्वरूप —(चौंककर) बिज़नेस —बिजि ..(समझ कर) ओह ..अच्छा, अच्छा । लेकिन जरा नाश्ता तो कर लीजिए ।

(उठते है !)

गोपालप्रसाद —यह सब आप क्या तकल्लुफ करते है ?

रामस्वरूप —हँ हँ . हँ ! तकल्लुफ किस बात का । हँ—हँ ! यह तो मेरी बडी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये । वरना मै किस काबिल हूं । हँ—हँ ! . माफ कीजिएगा जरा । अभी हाजिर हुआ ।

(अन्दर जाते हैं ।)

गोपालप्रसाद —(थोडी देर बाद दबी आवाज मे) आदमी तो भला है, मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नही मालूम होती । पता चले, लडकी कैसी है ।

शंकर —जी

(कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है ।)

गोपालप्रसाद —क्यो, क्या हुआ ।

शंकर —कुछ नही ।

गोपालप्रसाद —झुककर क्यो बैठते हो ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो । तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शकर की 'बैक बोन'

(इतने मे बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय की ट्रे लिये हुए । मेज पर रख देते हैं ।)

गोपालप्रसाद —आखिर आप माने नही !

रामस्वरूप —(चाय प्याले मे डालते हुए) हँ हँ हँ ! आपको विलायती चाय पसद है या हिन्दुस्तानी ?

गोपालप्रसाद —नही-नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए । और जरा चीनी ज्यादा डालिएगा । मुझे

तो भाई यह नया फैशन पसंद नहीं । एक तो वैसे ही चाय में पानी काफी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाय तो जायका क्या रहेगा ?

रामस्वरूप —हँ-हँ, कहते तो आप सही हैं ।

(प्याला पकड़ाते हैं ।)

शंकर —(खखार कर) सुना है, सरकार अब ज्यादा चीनी लेनेवालों पर 'टैक्स' लगाएगी ।

गोपालप्रसाद —(चाय पीते हुए) हूँ । सरकार जो चाहे सो करले; पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिये ।

रामस्वरूप —(शंकर को प्याला पकड़ाते हुए) वह क्या ?

गोपालप्रसाद —खूबसूरती पर टैक्स ? (रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं ।) मजाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देने वाले चूँ भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टण्डर्ड' के माफिक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले । फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है ।

रामस्वरूप —(जोर से हँसते हुए) वाह-वाह ! खूब सोचा आपने ! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के जमाने में तो यह कभी उठता भी न था। (तश्तरी गोपालप्रसाद की तरफ बढ़ाते हैं।) लीजिए ।

गोपालप्रसाद —(समोसा उठाते हुए) कभी नहीं साहब, कभी नहीं ।

रामस्वरूप —(शंकर को मुखातिब होकर) आपका क्या ख्याल है शङ्कर बाबू ?

शंकर —किस मामले में ?

रामस्वरूप —यही कि शादी तय करने मे खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपालप्रसाद —(बीच मे ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आपसे पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाये, चाहे वैसे हो। बात यह है कि हम आप मान भी जायें, मगर घर की औरतें तो राजी नही होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है ?

रामस्वरूप —जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपालप्रसाद —देखना क्या। जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

रामस्वरूप —हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है। हँ-हँ !

गोपालप्रसाद —और जायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा।

रामस्वरूप —जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुर जी के चरणो मे रख दिया। बस, खुद बखुद मिला हुआ समझिए।

गोपालप्रसाद —यह ठीक कहा है आपने, बिल्कुल ठीक (थोडी देर रुक कर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानो में भनक पड़ी है, यह तो गलत है न ?

रामस्वरूप —(चौंक कर) क्या ?

गोपालप्रसाद —यही पढाई-लिखाई के बारे मे ! ..जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उन के नखरों को। बस हद से हद मैट्रिक होनी चाहिए.... क्यो शंकर ?

शंकर —जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नही।

रामस्वरूप —नौकरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

गोपालप्रसाद —और क्या साहब ! देखिये कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि जब आपने अपने लडकों को बी० ए०, एम० ए० तक पढाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारो से कि क्या लडकियो की पढाई एक बात है। अरे मर्दों का काम तो है ही पढना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेजी अखबार पढ़ने लगी और 'पालिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगी तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पख होते है, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते शेरनी के नहीं।

रामस्वरूप —जी हां, मर्द के दाढी होती है, औरत के नहीं। . . हूँ हूँ. .हूँ !

(शकर भी हँसता है, मगर गोपालप्रसाद गम्भीर हो जाते है।)

गोपालप्रसाद —हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बाते दुनिया मे ऐसी है जो सिर्फ मर्दों के लिये है और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीजो मे से एक है।

रामस्वरूप —(शकर से) चाय और लीजिए।

शंकर —धन्यवाद। पी चुका।

रामस्वरूप —(गोपालप्रसाद से) आप ?

गोपालप्रसाद —बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिए।

रामस्वरूप —आपने तो कुछ खाया ही नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बतायें, वह मक्खन—

गोपालप्रसाद —नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं। और फिर टोस्ट—वोस्ट मे खाता भी नहीं।

रामस्वरूप —हूँ ..हूँ। (मेज को एक तरफ सरका देते हैं। फिर अन्दर के दरवाजे की तरफ मु ह कर ज़रा जोर से) अरे जरा

पान भिजवा देना ..! सिगरेट मँगवाऊँ ?

गोपालप्रसाद —जी नहीं।

[पान की तश्तरी हाथों में लिए उमा आती है। सादगी के कपड़े। गर्दन झुकी हुई। बाबू गोपालप्रसाद आँखें गड़ा कर और शंकर आँखें छिपा कर उसे ताक रहे हैं।]

रामस्वरूप —हँ . हँ! . .यही, हँ....हँ, आपकी लड़की है। लाओ बेटी, पान मुझे दो।

[उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रक्खा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे दोनों चौंक उठते हैं।

गोपालप्रसाद
शंकर —(एक साथ)—चश्मा!!

रामस्वरूप —(जरा सकपकाकर)—जी, वह तो ...वह . पिछले महीने में इसकी आंखें दुखनी आगई थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गोपालप्रसाद —पढाई-वढाई की वजह से तो नहीं है ?

रामस्वरूप —नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज किया न।

गोपालप्रसाद —हूँ। (सन्तुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में) बैठो बेटी।

रामस्वरूप —वहां बैठ जाओ उमा, उस तख्ते पर, अपने बाजे-वाजे के पास।

(उमा बैठती है।)

गोपालप्रसाद — चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है।. .हां, कुछ गाना बजाना सीखा है ?

रामस्वरूप - जी हाँ, सितार भी, और बाजा भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

[उमा सितार उठाती है । थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' गाना शुरू कर देती है । स्वर से जाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है । उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है । उसकी आँखें शंकर की झेंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है ।]

रामस्वरूप —क्यों, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा ।

गोपालप्रसाद —नहीं-नहीं साहब, काफी है । लड़की आपकी अच्छा गाती है ।

(उमा सितार रख कर अन्दर जाने को उठती है ।)

गोपालप्रसाद —अभी ठहरो, बेटी ।

रामस्वरूप —थोड़ा और बैठी रहो, उमा ! (उमा बैठती है ।)

गोपालप्रसाद —(उमा से) तो तुमने पेन्टिंग-वेंटिंग भी ...

उमा —(चुप)

रामस्वरूप —हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया । यह जो तसवीर टँगी हुई है, कुत्तेवाली, इसीने खींची है । और वह उस दीवार पर भी ।

गोपालप्रसाद —हूँ । यह तो बहुत अच्छा है । और सिलाई वगैरह ?

रामस्वरूप —सिलाई तो सारे घर की इसीके जिम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीजें भी । हें ..हें ..हें ।

गोपालप्रसाद —ठीक ! लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम विनाम भी जीते हैं ।

[उमा चुप । रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं । लेकिन उमा चुप है, उसी तरह गर्दन झुकाये । गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं !]

रामस्वरूप —जवाब दो उमा। (गोपाल से) हें हें, जरा शरमाती है। इनाम तो इसने...

गोपालप्रसाद —(जरा रूखी आवाज मे) जरा इसे भी मुह तो खोलना चाहिये।

रामस्वरूप —उमा, देखो, आप क्या कह रहे है। जवाब दो न।

उमा —(हल्की लेकिन मजबूत आवाज मे) क्या जवाब दूं बाबूजी ! जब कुर्सी-मेज बिकती है तब दूकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नही पूछता, सिर्फ खरीदार को दिखला देता है। पसन्द आगई तो अच्छा है, वरना ..

रामस्वरूप —(चौक कर खडे हो जाते है) उमा, उमा !

उमा —अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी। ..ये जो महाशय मेरे खरीदार बन कर आए है, इनसे जरा पूछिये कि क्या लड़कियो के दिल नही होता ? क्या उनके चोट नही लगती ? क्या वे बेबस भेड़-बकरियां है, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भाल कर खरीदते है ?

गोपालप्रसाद —(ताव मे आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिये मुझे यहां बुलाया था?

उमा —(तेज आवाज़ में) जी हां, हमारी बेइज्जती नही होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे है ? और जरा अपने इन साहबजादे से पूछिये कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यो घूम रहे थे, और वहाँ से क्यो भगाये गये थे !

शंकर —बाबूजी, चलिए।

गोपालप्रसाद —लड़कियो के होस्टल में ?.. क्या तुम कालेज में पढ़ी हो ?

(रामस्वरूप चुप !)

उमा —जी हाँ, मै कालेज में पढी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नही किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झांक कर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्जत—अपने मान का खयाल तो है। लेकिन इनसे पूछिये कि ये किस तरह नौकरानी के पैरो पडकर अपना मुह छिपा कर भागे थे !

रामस्वरूप —उमा, उमा !

गोपालप्रसाद —(खडे होकर गुस्से मे) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लडकी बी० ए० पास है, और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढी है। लाइए, मेरी छडी कहाँ है। मै चलता हू। (छडी ढूँढ कर उठाते है।) बी० ए० पास ? उफ्फोह ! गजब हो जाता ! झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलो .

(दरवाजे की ओर बढते है।)

उमा —जी हाँ, जाइये, जरूर चले जाइये। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइयेगा कि आपके लाडले बेटे के रीढ की हड्डी भी है या नही—यानी बैकबोन, बैकबोन—

[बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लडके के रुआसापन। दोनो बाहर चले जाते है। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते है। उमा सहसा चुप हो जाती है , लेकिन उसकी हँसी सिसकियो मे तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत मे आना।]

प्रेमा —उमा, उमा .रो रही है ?

[यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।]

रतन —बाबूजी, मक्खन !

(सब रतन की तरफ देखते हैं और पर्दा गिरता है।)



वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल नं० 220.22 प्रभाक

लेखक प्रभाकर विष्णु

शीर्षक रीढ़ की हड्डी

खण्ड क्रम संख्या ४३५६